अंतर्भारतीय पुस्तकमाला

गति और रेखा

हिंदी संचयन (ललित निबंध)

गति और रेखा

(यात्रा, रेखाचित्र एवं संस्मरण)

संकलन और संपादन
विद्यानिवास मिश्र

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया,

प्रथम संस्करण 1987 (शक 1909)
द्वितीय आवृत्ति 1990 (शक 1910)

GATI AUR REKHA (HINDI)

रु० 9.50

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क,
नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

अनुक्रम

भूमिका

आधुनिक हिंदी साहित्य का आरंभ गद्य से हुआ। प्रारंभ में ईशा अल्ला खां, सदल मिश्र, लल्लूलालजी के साहित्य में गद्य को रोचक बनाने का यत्न किया गया। इनकी भाषा में पद्य की गहरी छाप थी। भारतेंदु युग में वास्तविक रूप में हिंदी अपने चाल में ढली। हिंदी गद्य को टकसाली भाषा के रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय राजा शिवप्रसाद "सितारे हिंद" और भारतेंदु हरिश्चंद को है। इन दोनों ने गद्य के साथ अनेक प्रकार के प्रयोग किए। गद्य को सूचनात्मक ज्ञान का माध्यम बनाने के लिए इन्होंने, विशेष रूप से राजा शिवप्रसाद "सितारे हिंद" और उन्हीं के समकालीन गुरुदेव गुपरची ने हिंदी में पहली पाठ्यपुस्तक लिखी, भारतेंदु ने यात्रा-वृतांत लिखे। इनमें वैद्यनाथ धाम की यात्रा, बस्ती की यात्रा और उदयपुर की यात्रा प्रसिद्ध हैं। भारतेंदु के अनन्य मित्र बदरीनारायण "प्रेमघन" चौधरी ने आंखों देखा हाल जैसा विवरण और शब्द-चित्र प्रस्तुत किए। भारतेंदु मण्डल ने व्यक्तिव्यंजक निबंध की नींव डाली। निबंध को कविता के विकल्प के रूप में दूसरे शब्द में गद्य-काव्य के रूप में विकसित करने में भारतेंदु के उत्तरवर्ती लेखकों का बड़ा योगदान है। इनमें रायकृष्णदास, वियोगी हरि, चंडी प्रसाद हृदयेश, गोविंद नारायण मिश्र के नाम उल्लेखनीय हैं। उसी काल में गद्य की विविध विधाएं अपनी अलग पहचान पाने लगीं समालोचना, व्यंग्य, यात्रा-वृतांत, रेखाचित्र, संस्मरण, चिंतन परक निबंध, इन सबकी अलग-अलग शैलियां विकसित हुई। हिंदी के मासिक पत्रों ने इन विविध शैलियों के विकास के लिए अवसर दिया और ऐसे-ऐसे लोगों से हिंदी में गद्य-रचना करायी जो सीधे साहित्य से नहीं जुड़े थे। इसके कारण हिंदी गद्य में सहजता आती गयी और वह अभिव्यक्ति का शक्तिशाली माध्यम बनता गया। समकालीन युग तक आते-आते हिंदी का गद्य साहित्य इतना समृद्ध हो गया है कि उसमें से किसी भी विधा के लिए चयन करते समय कठिनाई उपस्थित होती है कि किसको छोड़ें। प्रस्तुत चयन गति और रेखा, ग्यारह निबंधों का संकलन है, जिनमें छः यात्रा वृत्तांत है और पांच रेखाचित्र और संस्मरण हैं। यात्रा-वृत्तांतों में एक यात्रा वृत्तांत एक अनाम व्यक्ति का है, जो विलायत में गये एक भद्र पुरुष की प्रतिक्रियाओं का लेखा-जोखा है। यह बंधुवासी में धारावाहिक रूप में छपा, बाद में पुस्तक रूप में भी

प्रकाशित हुआ । इस यात्रा वृत्तांत को देने का उद्देश्य यह था कि गैर-साहित्यिक की भाषा का एक स्वरूप सामने आए और पता चले कि 19वीं शताब्दी के अंत में हिंदी गद्य कितना समर्थ हो चुका था । शेष यात्रा-वृत्तांत में दो यात्रा-वृत्तांत विदेश के हैं और तीन देश के भीतर के हैं । इन सभी यात्रा-वृत्तांतों में सैलानीपन का भाव है और ये वृत्तांत मात्र नहीं हैं ये यात्री मन की छाया भी हैं । यत्न यह किया है कि सो वर्षों के भीतर की यात्रा साहित्य की यात्रा के विविध चरण सामने आ जाएं ।''बिलायती रामलीला'' में विक्टोरिया कालीन इंगलैंड की झांकी है और विवरण प्रस्तुत करने वाला एक ठेठ हिंदुस्तानी मन है । ''हिमपात'' घुमक्कड़ शास्त्र के आचार्य स्व० राहुल सांकृत्यायन की एक हिमालय यात्रा का विवरण है । उन्हें हिमालय से विशेष लगाव था । इस विवरण में हिमपात और हिमपात से जुड़े मनुष्य के मनोभाव पर लेखक ने सूक्ष्म दृष्टि डाली है । अज्ञेय का निबंध ''बीस हजार राष्ट्र कवि'' वेल्स की यात्रा का एक चित्र शीर्षक उपस्थित करता है जिसमें लेखक लोक गायकों की परंपरा के प्रति गहरी सहानुभूति भरता है । रघुवंश का ''मृगमरीचिका का देश'' राजस्थान की यात्रा का विवरण है और इसमें अनेक परिदृश्य भीतर और बाहर से एक दूसरे में पिरोये हुए हैं । ''सागर घेरे विशाल'' हिंदेशिया की यात्रा का विवरण है । कृष्णनाथ का ''रोहतांग के पार'' एक धर्मसाधना की खोज से प्रेरित यात्रा का भावपूर्ण बिवरण है । ये सभी निबंध अपने-अपने ढंग के हैं ।

पांच रेखाचित्रों में पहला रेखाचित्र है, प्रेमघन का ''ऋतुचित्र'' जिसमें वर्ष भर में परिवर्तनमान ऋतु चक्र के चढ़ाव उतार के मनोरम वर्णन हैं । इसमें एक ओर तो रीतिकालीन ऋतुवर्णन की छटा है और 19 वीं शताब्दी के रईसी ठाठ के चित्र हैं तो दूसरी ओर वन्य प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण और रंगों की पहचान अंकित है । दूसरा रेखाचित्र संस्मरण साहित्य के आचार्य पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी का ''धर्मपत्नी को श्रद्धांजलि'' है जिसमें उन्होंने बड़े ही आत्मपरीक्षणात्मक ढंग से अपनी स्वर्गीय पत्नी का स्मरण किया है । तीसरा रेखाचित्र है स्व० रायकृष्णदास का ''इश्क ने गलिब·····'' जो स्वर्गीय जवाहरलाल नेहरू के राग बोधात्मक पक्ष की एक मनोरम पार्श्वछवि है । अंतिम शब्दचित्रण है महाराज कुमार रघुवीर सिंह का ''फतेहपुर सीकरी'' जिन्होंने इतिहास के ज्ञान के झरोखे से अनेक ऐतिहासिक स्थलों का अतीत वर्तमान की तरह प्रस्तुत करने में अनुपम सफलता पायी है ।

ग्रंथ के आकार की सीमा न होती तो भारतेंदु, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, माधव प्रसाद मिश्र, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, रामचंद्र शुक्ल, वियोगी हरि, जगमोहन सिंह के भी निबंध सम्मिलित किए गए होते और उत्तरवर्तीकाल

में तो इतने अधिक विशिष्ट हस्ताक्षर हैं कि उनमें से किसी एक को छोड़ना अपराध लगता है। विशेष रूप से अद्भुत सैलानी सत्यनारायण सिंह, निर्मल वर्मा, श्रीकांत वर्मा और भगवती शरण सिंह के यात्रा निबंध छोड़ने का विशेष दुःख है। उसी प्रकार स्व० राजनाथ पांडेय, अमृतराय, विष्णु प्रभाकर, प्रभाकर माचवे, स्व० भवानी प्रसाद मिश्र, धर्मवीर भारती के संस्मरण चित्र भी समवेत न कर पाने से असंतोष है।

हिंदी का यात्रा साहित्य बहुत विपुल और बहु-आयामी है। उसमें तथ्यात्मक विवरण से लेकर भावात्मक अंकन तक के कई स्तर मिल जाते हैं। कुछ में केवल वस्तु निरीक्षण है और कुछ में केवल संस्कृति से एक नई साक्षात्कार की जाती हुई संस्कृति का भाव-ग्रहण है, कुछ में विदेश यात्रा के व्याज से स्व और स्वदेश की पहचान का प्रयत्न है, कुछ में एक संश्लिष्ट भाव योजना है जिसमें दृश्य और द्रष्टा का पूरा तादात्म्य हो जाता है। यात्रा वृत्तांत के नाम पर नीरस उबाऊ और कभी-कभी उपहासास्पद साहित्य भी छपता रहता है, पर उसे साहित्य कहना ही उचित नहीं है, क्योंकि वह यात्री-मन से लिखा हुआ साहित्य नहीं है। सच्चे यात्रा साहित्य में यात्री की निजता यात्रा में विलीन हुई दिखती है, उसी प्रकार संस्मरण या रेखाचित्र तभी सफल साहित्य लगता है, जब उसमें लेखक अपनी बात अधिक नहीं करता या करता भी है तो केवल आनुशंगिक रूप में करता है। वह अपने प्रतिपाद्य विषय के किसी एक विशेष पक्ष को ऐसे रेखांकित करता है कि उस रेखांकन में प्रतिपाद्य व्यक्ति या वस्तु का सम्पूर्ण अस्तित्व उद्भासित हो उठता है। महादेवी जी के रेखाचित्र जिन पालतू पशुओं पक्षियों को लेकर या जिन उपेक्षित मानव पात्रों को लेकर प्रस्तुत किए गए है उनमें गहरी आत्मीयता एवं करुणा के द्वारा प्राण प्रतिष्ठा करायी गयी है, सामान्य से सामान्य को किस प्रकार एक विशेष देखने वाली दृष्टि अनुपम विशेषता से मंडित कर सकती है, यह रेखाचित्र की कसौटी है। सफल संस्मरण के लिए सबसे अधिक आवश्यक यह है कि स्मृतियों की भीड़ मे से कुछ एक सार्थक स्मृतियों का चयन और संयोजन किया जाय। संयोजन ऐसे किया जाय कि किसी के भी जीवन के चढ़ाव-उतार का उसके गंभीर और विनोदी क्षणों का उसके छायातप का चित्र उपस्थित हो जाय।

यात्रा निबंध रेखाचित्र और संस्मरण को व्यक्तिव्यंजक निबंध से अलग कोटि के रूप में रखना इसलिए संगत है कि व्यक्तिव्यंजक निबंध में जितनी उड़ान लेने की छूट है और देशकाल की अन्वितियों को तोड़ने की छूट है उतनी छूट इन तीनों कोटियों में नहीं है, क्योंकि इन कोटियों में भूगोल-इतिहास दोनों महत्त्व-पूर्ण चौखटे होते हैं। इनको अलग कोटि बनाने का दूसरा औचित्य यह है कि

इसमें व्यक्ति केवल आख्याता या वाचक है वह स्वयं आख्यात या वाच्य नहीं है, व्यक्ति व्यंजक निबंध में व्यक्ति का निजत्व अधिक मुखर रहता है, इसका अर्थ यह नहीं है कि यात्रा निबंध या संस्मरण या रेखाचित्र में व्यक्ति विलुप्त रहता है। जैसाकि पहले कहा जा चुका है, व्यक्ति आनुशंगिक भूमिका में रख दिया जाता है दृश्य या वर्ण्य विषय ही केंद्र में स्थापित हो जाता है। कभी-कभी ऐसा हो सकता है कि यात्रा निबंध और व्यक्तिव्यंजक निबंध का एक संश्लिष्ट रूप बन जाय ; पर तब यात्रा का तत्व वहां धूमिल पड़ जाता है, तब उसे शुद्ध रूप से यात्रा निबंध कहना मुश्किल लगता है। इसी प्रकार की संश्लिष्ट संभावना में रेखाचित्र या संस्मरण में भी हो सकती है। निर्मल वर्मा के यात्रा निबंध या अमृतराय के रेखाचित्र इस प्रकार के संश्लिष्ट रचना के अनुपम उदाहरण हैं।

वस्तुतः यात्रा निबंध, रेखाचित्र और संस्मरण में रचना का बहिर्मुखी भाव अधिक प्रबल रहता है और इसीलिए हिंदी के अभिव्यापक अंतर्मुखी वृत्ति के परिपूरक के रूप में इस प्रकार के साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है इसी प्रकार के साहित्य में आंख, कान खोलकर अनुभव करने का सबसे अधिक विश्वसनीय प्रमाण मिलता है। ऐसा नहीं है कि इनमें आत्मालोचन नहीं होता या अंतर्निहित भावों का उद्रेक बीच-बीच में न होता हो, किंतु उनके बावजूद भी वस्तुपरकता आगे रहती है यह दूसरी बात है कि निरी वस्तु के रूप में प्रस्तुत नहीं होती वह मानवीय संवेदना से संस्पृष्ट सजीव वस्तु के रूप में होती है तभी इनमें सृजनशीलता आती है और वे साहित्य की कोटि में परिगणित होते है।

इस प्रकार के साहित्य ने हिंदी भाषा को कई तरह से समृद्ध किया है, वस्तुओं के विशेष गुणों को हृदयंगम करने के लिए तरह-तरह के विशेषण प्रयोग में लाये गये हैं कुछ भाषा प्रयोग में पहले से मौजूद रहे हैं पर साहित्य में साहित्य की भाषा के लिए नये रहे हैं। कुछ लेखकों के द्वारा सादृश्य या वजन के आधार पर गढ़े गये हैं। उदाहरण के लिए प्रेमघन ने सुहा, गुलब्बासी, गुलेबार, करांदिया सुवापंखी, इज़मुररी, अंगारी, और गंधकी धानी रंगों के उल्लेख किए है। विशेषण के अलावा भाषा के लिए दूसरा उदाहरण है वाक्यों का बहाव। इस प्रकार के निबंधों में एक वाक्य दूसरे वाक्य में घुलता चला जाता है, क्योंकि एक अनुभव दूसरे अनुभव को उकसाता चलता है विचारपूर्ण गद्य में या व्यक्तिव्यंजक निबंध में वाक्य गठन दूसरे प्रकार का होता है ; वहां निरंतर अपने भीतर झांकने और सोचने की आवश्यकता भाषा पर एक लगाम लगाये रहती है और उनमें अच्छी तरह कसे हुए केशपाश के सौंदर्य का रूप दिखता है, जबकि प्रस्तुत प्रकार के निबंधों में सद्यःस्नान खुले केशपाश का सौंदर्य दृष्टिगोचर होता है। भाषा की सहजता की साधना के बिना इस प्रकार के निबंध नहीं लिखे जा सकते। सहजता

का अर्थ सरलता नहीं है सहजता का अर्थ अनायास आया हुआ भाव है और यह तरह-तरह की जिंदगी से और उसकी भाषा से गुजरने की लंबी प्रक्रिया के बाद ही सधती है।

भाषा की दृष्टि से तीसरा अवदान इस प्रकार के साहित्य का यह है कि इसमें सूचनात्मक ज्ञान को किस तरह अपने अनुभव का अंग बनाकर संप्रेषित किया जाता है कि वह ग्राहक को सत्यता के रूप में न प्राप्त होकर उसके अनुभव का हिस्सा बनाकर प्राप्त हो, इस प्रक्रिया में भाषा एक विचित्र प्रकार के तनाव में बहुत लचीली हो जाती है। उदाहरण के लिए राहुल जी का "हिमपात" वर्णन लें। इसमें हिमपात की भौतिक रचना की जानकारी देते हुए लेखक कहता है कि "आकाश का तापमान यदि हिमबिंदु से नीचे हो, लेकिन पृथ्वी पर पहुंचते ही विलीन होकर जल बन जाते हैं। मसूरी में जलवृष्टि निम्न तापमान में बजरी (नरम-छोटे-छोटे ओलों) का रूप लेती है। तापमान के और गिरने पर बजरी हिमकणों का रूप लेती है और भी अधिक शीतलता आने पर हिम रूई के फाओं का रूप लेता है, हलकी सी हवा चल रही हो तो ये फाए हवा में तैरते हुए तिरछे चलकर भूमि पर उतरते हैं। हिमकणों के फाओं के गिरने से पृथ्वी ढंकने लगती है। यदि चांदनी रात में हिम वृष्टि हो रही हो तो दृश्य और भी सुंदर होता है।" इसमें सूचना की प्रस्तुति सहज उपमानों से ऐसे की गई है कि वह सूच्य विषय आंखों के सामने अनदेखे झूलने लगता है।

इन सभी कारणों से हिंदी साहित्य में यात्रा निबंध रेखाचित्र और संस्मरण का एक विशेष स्थान बन गया है। यह संकलन हिंदी की गति और हिंदी की रेखा की पहचान सही अर्थों में कराता है। देश और काल में इसकी अभिव्यक्ति के प्रसार और इसके नुकीलेपन की तीक्षता दोनों का बोध प्रस्तुत प्रकार के साहित्य में होता है। इसीलिए मैंने इस संकलन का नाम "गति और रेखा" रखा है।

मैं उन निबंधकारों का ऋणी हूं जिनके निबंध इस सकलन में संकलित किए गए हैं। इस काम को पूरा करने में मुझे अपने दो शिष्यों डा॰ सुवच्चन पांडेय और हेमराज भीना से सहायता मिली है आर्शीवाद देता हूं। नेशनल बुक ट्रस्ट ने आग्रह करके यह संकलन मुझसे तैयार करा लिया उसका और उसके अधिकारियों का आभारी हूं।

विद्यानिवास मिश्र

ऋतु चित्र

बदरीनारायण चौधरी "प्रेमघन"

प्रकृति चित्रण में प्रेमघन जी ने परम्परागत शैली का जहां पर निरूपण किया है, वहां पर तो रीतिकाल का आभास मिलता है। पर उन्होंने प्रकृति को पोषक और संहारक, दो रूपों में विभक्त किया है। प्रकृति का निरीक्षण प्रकृति का जड़ और जंगम पर प्रभाव लेख में स्पष्ट है। समन्वय की भावना की लेख में अमिट छाप है।—सं०

रसिको, जिस उपद्रवी हिम ऋतु के आगमन से संसार मैला, कुचैला, छविहत, और कूड़ा करकट से भर गया था, बिचारे शिशिर ने स्वयम् तीक्ष्ण वायु की झाड़ू हाथ में लेकर और मानापमान का कुछ भी ध्यान न कर पीले और सूखे पत्ते वृक्षों और लताओं से दूर कर इस असंख्य कूड़े को दिशाओं के अन्त में अर्थात ईश्वर के म्यूनिसिपल की सीमा के बाहर जा फेंका, और बांसों को भी रगड़-रगड़ कर आग निकाल समस्त भूमि की छविहत सूखी घास जला उसकी राख का भी लेश पूर्वोक्ति रीति से न रक्खा।

चटपट बसन्त आकर सजावट और बनावट की सामग्री नाना प्रकार के समारम्भ में लगाकर, तुरन्त सब कुछ सब प्रकार सुशोभित किया, फूलने वालों को नूतन पल्लव से पल्लवित कर और फलने वालों वृक्षों को कुसुमित कर आज्ञा की, कि देखो सब प्रकार पुष्प फल युक्ति हो ठीक रहो, निदान इस रीति सावधानी से सब को सावधान कर अपने सहायक ग्रीष्म को नियुक्त कर आप को कर्पूर सौरभ समान चल बसा, कि कोयलें कूक कूक कर लगीं आज्ञा सुनाने कि अरे सावधान ! देखो-देखो ये जो छुद्र जलाशयों के बचे बचाये यत्किंचित शेष जल दुर्गन्ध युक्त हो कष्ट के कारण हुए थे, यद्यपि उसे शोक सूर्य ने सिखाया, परन्तु मृत्तिका का भी हृदय शुष्क रहने योग्य है, कि जो सुगन्धि का कारण हो, ये आम्र के हरित फलों को तुरंत पीतकर वृक्षों की नूतन पत्रावलियों को जिनपर

अभी हरा रंग दिया गया है सुन्दर तीक्ष्ण धूप में सुखा कर उस पर शीघ्र शोखी और निखराहट की वार्निश फेरी कि रंगत खुल पड़े ।

देखो पुरवाई ऐसी तीक्ष्ण गति से चली मानो रेल का वेग बन गई, पंक वृष्टि के मिस धूम आकाश में छाया, झिल्लियों ने सीटी बजाया, वाह विद्युत समाचार स्वयं विद्युत लाई, अरे यह क्या एक छोटा सा टुकड़ा बादल का भी सिगिनल सा झुका सा दिखाई देता है, तब निश्चय हो चुका कि महाराज पावस की स्पेशल ट्रेन देखो यह आन के आन में आ पहुंची और चातक-चारण और मयूरियों ने मधुर स्वर में वारांगनाओं के समान गान आरम्भ किया ।

सुनकर संजोगनी ससिमुखियों ने सहेलरियों से शासन किया किया कि ! अरी खस खस की टट्टियों को हटाओ और वायु-यंत्र (हवाकश) को दूर करो, तहखानों से शीघ्र चलकर वाटिका के बंगलों को सजाकर तैयार करो, जलयंत्र और फव्वारों को बन्द करने की आज्ञा करो, और जो कि अब शर्वती, संदली और अरगजे के वस्त्रों के दिन गये, अतएव सूहा, गुलेनार, गुल अब्बासी, करौंदिया, और सुआपंखी, सबज: जर्मुरदी, जंगारी, गन्धकी धानी रंग के वस्त्रों को केवड़े केतकी और जूही के इत्र से सुगंधित करो क्योंकि अब मिट्टी और खश के इत्र की सुगंध की बहार गयी, फूलदानी में बरसाती फूलों के गुच्छे लगाये जायं, गान करने वालियों वारांगनाओं से कहो कि धूरिया मलार को छोड़ जल्द मेघ मलार और बर्साती गीतों के गान का आरम्भ करें, मैं प्यारे प्रीतम के संग अभी हवा वर्षा विहार अवलोकन के अर्थ जाऊंगी । और बिचारी वियोगिनी वनिताओं के प्रान प्रयान करने लगे ।

सत्य है ! वे क्यों कर जी सकें जब कि ऐसा प्रबल शत्रु अर्थात महाराज पावस वीरेश की जिसकी सहायता के बिना काम बेकाम सा रह सकाम कृपा कटाक्ष की कामना करता है, आपने समस्त साज सामाज को साज आज आया, देखो यह गरज के मिस तोपें छूटने लगीं, कि आकाश धूम स्याम घन सघन से घिर समस्त संसार को अंधकारमय बना दिया, इन्द्र धनरूपी धनुष से बूंदियों के बाणों की वर्षा होने लगी, बकावलि सैन समूह के संग देखो यह बिजली के पटा को फिराता कौन चला आता, क्या यह सावन सेना पति है; अवश्य ! देखो यह दादुरन की बोली है ।

निश्चय बसन्त से रितुराज पद को छीनकर आज आप ही सच्चा रितुपति बनना चाहता है और सत्य भी है कि जब वह एक प्रबन्ध करता आज्ञाकारी स्वामी की समाधि को धारण करै, कैसे क्रोध न आवै, और फिर व्यथित व्याकुल वियोगी विचारे भी कि जो व्यर्थ कहने मात्र को जीवित हैं, वसुधा वे मृतक यथा गिनती गिनवे को रही छतहूं अछत समान ! अब सिखि एक तिथि ओम

लौं परे रहें तन प्रान। "और फिर" लोग अक्सर मेरे जीने का गुमां रखते हैं जिससे न मारा गया स्वयं स्वामी को क्लेश उठाना पड़ा क्यों न कुत्सित कहा जाय। जैसे कभी देशाधीश के प्राप्त होने से देश का रंग ढंग बदल जाता है तद्रूप पावस के आगमन से इस सारे संसार ने भी दूसरा रंग पकड़ा भूमि हरी भरी होकर नाना प्रकार की घासों से सुशोभित भयीं, कि मानो मारे मोद के रोमांच की अवस्था को प्राप्त भयीं, सुन्दर हरित पत्रावलियों से भरित तरुगनों की सुहावनी लतायें लिपिट लिपिट कर मानों मुग्धा मयंक मुखियों को अपने प्रियतमों के लिए अनुरागालिंगन की विधि बतलाती। इनसे युक्त पर्वतों के श्रृंगों ने मानव हरित कंचुकी से आवेष्टित युवतियों के कलित कठोर कुच का अनुकरण किया, सुन्दरी दरी समूह से स्वच्छ श्वेत जल प्रवाह मानों पारा की धारा और बिल्लौर की ढार को तुच्छ कर जुगल पार्श्व की हरी भरी भूमि कि जो मारे हरेपन के स्यामता की झलक दे अलक की शोभा लायी हैं, बीचोबीच मांगसी काढ़ मन मांग लिया और पत्थल की चट्टानों पर सुम्बुल अर्थात हंसराज की जटाओं का फैलना बिथरी हुई लटों के लावण्य का लाना है कि जिन्हें दुष्ट पशु न वर लें रखवाली के लिए कन्दराओं केहरी गुर्राहट का भयंकर नाद करते हैं, जिसे सुन मत्त मातंग माला चिंघाड़ती हुई भागती सन्मुखस्थ वृक्षों को तोड़ती बन में घुसतीं, कि जहां शूकर को गुरगुराते देख शेर चटक कर चढ़ धाता, और चीते को दौड़ाते रीछ वृक्षों पर भी चढ़ जाते, कहीं नील गाय की झुण्ड आतीं कहीं घोड़े रोज की फौज जाती, नदियों के ऐसे कूल कछार और पुलिनों में कि जिसके सघन वृक्ष समूह स्वादिष्ट मिष्ठ फले और सुन्दर रंग तथा सुगन्ध से युक्त फूले से फबे हैं, उन पर बैठे हुए लंगूरों की लम्बी और सजीली पूंछें लटक रही हैं और ऊपर चोटियों पर जिनके नाना प्रकार के विहंग भांति-भांति की सुहावनी बोलियां बोलते मानो फलों को चख उनके स्वाद का वर्णन कर रहे हैं। कहीं कलित कुंज कलापी कुल की कूक और नृत्य, कपोत, कीर, कोकिल, स्यामा, मैना, हरेबा, हरदी, हारिल, भृंगराज, दहिअर, लाल, मुनियां, तूती, कुमरी, फाख्ता, चकोर, चातक की चहेंकार और किलकार से कूजित मानो ईश्वर के चिड़िया खाना (विहंगालय) की गौरव जाता चित्त चोर लेते, और बीच की बेकीच हरी और कोमल दूर्बाओं से सुशोभित भूमि में कुरंगी कीड़े और सरंग समूह अर्थात कस्तूरी व स्याम मृग और बारहसिंघे इत्यादि अपने-अपने मृग वत्सों से घिरे चरते, और पंकज बन में टहलते, मराल मंडली और सारस समूह कलरव करते मन हरते गयन्द गति का अनादर कर निज गति की मति मनों मयंकमुखियों को दे रहे हैं। अहा यह ज्योतिष्मतीलता (माल काकुन) फलवती हो कैसी शोभित भई, बनबेले (कौरैया) फूल कर बाग के बेलों को लजाया। न यह शोभा केवल पर्वतों ही ने पाया किन्तु पुष्पवाटिकाओं पर भी

यौवन आया, देखो कदम्ब ने काम के कामिनी के कलित कुचों की तुल्य फूल फलाए, मौलश्री ने भी अपनी पुष्पश्री की अधिकाई दिखाई, पारिजात अर्थात् हरसिंगार ने कुसमालकार से सिंगार किया कि जिनकी शोभा देख अनुरागवती युवती समान ललितलताओं में निमग्न होने से न बचीं, कृष्ण कान्ती कृष्णा कान्ती के ध्यान मानों कृष्णकान्तिमय हो प्रत्यक्ष कृष्णकान्ति को दरसाया। इश्क पेचा उसके इश्क़पेचों में पड़ पेच दर्पेच में पेचोताब खाये मानों लाल मुकुलों के मिस कलेजे की बेटियां काटे हज़रतें इश्क के नज़्र के लिए मौजूद है, मालती मालती हो मालइव गलें पड़ी, केवड़ों ने कुसुम की कटार से कुसुमायुध के कराल करवाल को काटा। दोपहरी फूलीं के प्याले लहू से भरे, चांदनी ने अपनी चांदनी छिटकाया, गुले अब्बास ने अपनी सुवास फैलाया, शब्बों पर खुशबू की बाढ़ आई, नगर नागरियों की भांत गुलमेहंदी ने भी मिहंदी लगा नया रंग लाई, अलबेला बेला इस बेला चमेली के बीच मेली मिलापीपन जना जुही की तरह जवाहिर जरित जेवरों से सज्जित मानों सुगन्ध की सार खींच शेष सुमन से सुगन्ध शब्द में से सकार का लोप कर नाज करना आरम्भ किया, जब गुलेचीन चीन से जा नवीन छबि उड़ा लाया। हौज तालाब और सरोवर स्वच्छ जल से पूर्ण हो मानों शोभा से भर कर रूप गर्विता नाइकाओं की भांति जिन सौन्दर्य अवलोकनार्थ अनगिन्त नैन कमल और कुमोदिनी के बहाने से खोले, नदियां बाढ़ की बाढ़ पर आ खसी खस्शाक (घास पात) बहाती, हरहराती चद्दरें फेंकती, भौरो में घूमतीं, तोड़ और तीक्ष्ण धार को धारे, करार गिराती चली जाती, कि जिनकी घुंधलेपन की रंगत ने मानों उन्हें जवानी की दुति दे दिया, जिन पर भांति-भांति के कीड़े मकोड़े फतंगें मानों बर्फी समुन्दर के ऊपर घोड़ों के सदृश्य दौड़ रहे हैं।

दिहातों और बस्तियों के खेतों पर भी सब्जी छाई धान के हलकोरों ने धानी रंग की लहरें ला जल भरे स्थल को शोभा दिया, कि जिन पर चढ़ी खीर बहूटियां मानों लाल की लडी सी कुछ अकथनीय शोभा को दिखला देती। रात को जुगुनुओं की ज्योति मानों अंधेरी रात देख भगवान ने तारागणों को आकाश से भूमि पर भेजकर प्रकाश दिया, अथवा आगामी दीपावली (दिवारी) की सूचना दिया है।

पावस प्रस्थान

निदान जब कलित कालेबलाहकों की कतार से अंधकारमय संसार की अपार बहार बिहार के अनुसार अनुभव भई, भूपति भाद्रपद ने अपनी प्राण प्यारी निसा सुकुमारी को आलिंगन करना आरम्भ किया, कि अनादर के ग्लानि से अभिमान रहित सोक सहित लज्जित उज्वल दुति वाली तारावली तरुणियों ने अपने अनुपम और अमन्द आनन को अदृश्य किया। तो मोह मय मलिन मन अपमान का औसर

अनुमान मानकर मयक-मरीचिकाओं ने भी मूं छिपाकर के आकर में जाकर उसे भी न जाने कहां छिपाया। अब ऐसे अनुकूल अवसर में खदोतों को भी जब अपनी चमक दमक दिखाने का अवसर मिला तो प्रायः सभी छुद्र द्युति धारी उष्मज जन्तुओं को घमण्ड के घन्टे का बजाना सुलभ हुआ, और सभी निज निज शक्त्यानुसार लगे जुग जगाने, उसी काल में मानों साक्षात काल में विशाल व्याल कराल रूप धारण किए संग में अशेष शेषावतन्सों का सैन समूह लिए आये और अपनी अपनी मणि घर-धर के लगे इधर उधर घूमने कि अभागे कीड़े फतगे पांखी और फनगे इत्यादि दीपक के धोखे से लगे चाव भाव से आवने कि जिन्हें रखवाली के सुभट नोग भोग लगाने लगे, उधर भ्रमण करते भुजंग भोजन के खोज में बिलों में घस-घस भूंस घूस को ठूंस ठूंस चामते, कोई पकड़ कर दादुर ही को दरदराये डारते। कहीं अजगरों का दूर ही से पशुओं को खींच-खींच कर निगल जाना, कहीं काली नागिनों का उस ओस आसव पान से उन्मत हो बलखा खाकर तलमलाना, कहीं काले नाग फन फैलाए फूंकारते, कहीं विषभरे कराइत अहगार से हुगारते, कहीं अपने तीक्ष्ण तालू के दांतों के गर्व से गर्विस गोहुअन गुरगुराते, कहीं घोड़ कराइत घोड़े की भांति हिनहिनाते, कहीं डोड़हे आते, कहीं असडिहे जाते कहीं धामिन धाती, जो कहीं चीतरे गिराती, कहीं बिच्छू और खनकजूरे डोलते, तो वहीं गोह और विपखोपड़े बोलते। निदान इस रीति जब इत्यन्त घोर और भयंकर समय व्यतीत होने लगा, दीन जीव व्याकुल हो बिलख-बिलख कर लगे कोलाहल करने ज्यों ही देखा कि मेघ अत्यन्त जोर मे सोर कर रहे हैं, झीगुर झिल्ली और रीवे भी रींव-रींव कर अपना सुर मिलाने लगे जिसके बीचो-बीच छपया चुहचुहिया, चम्मे कैसे सुन्दर संग के साथ समका ताल गिराते, टिटहरी, उल्लू, खूसट भयंकरी इत्यादि बिहंगों ने चतुरंग तराना, तिखट की अलाप-अलापा कि जिसे सुन मुजान सरहंस विवस हो लगे।

संगीत रस के एक मात्र प्रथम श्रेणी के रसिक सिखी समूह भी षडज स्वर से कराहने लगे, इधर जब कोइले पंचम स्वर को संवार गिट गिरी, भर मरकर कूकने लगीं, तो उधर पपीहे भी षम स्वर को साध पिंहकारने लगें, अब जो पीय पीहो। पिया कहां की। की धुन सुन परी बिचारी कृष्णभिसारिका नायिका कि जो इस समय असित सिंगार साजे स्याम निशामें मिली पूर्वोक्त भुजंग मणियों से प्रदर्शित मार्ग में शीघ्र बेग से अपने प्रीतमों से मिलने जाती थी रुक कर सोचने लगी कि है। क्या वह वहां नहीं। (सोचकर) ऐ है, ये तो पापी पपीहा है। अरे ये दई मारे। इतनी देर कर भला तुझे क्या फल मिला। दापि ऐसे कह कर चली, पर तो भी विप्रलब्धाओं की भांति चित्त में सोक सरिता की कहर लहरे उठने लगी, और विप्रलब्धाएं नदी कूलस्थ वृक्षों की

भांति जीवन से हताश हुई वासकसज्जाएं कि जो सुथरी सेजै सवांर सोलहो सिंगार साजे दर्पण में अपने आनन की दुति देख प्रसन्न मन पिया के पैरे की आहट सुनने को ध्यान लगाए बैठी थी, सुनते ही उनके मयंक मुख की दुति मन्द हुई, मन पर मानो नैराश्य की घटा घिर आई, और उत्कंठिताओं की भांति उत्कंठा की अधिकाई होने लगी, फिर उत्कंठिता की उत्कंठा के पूर्ण समय में जो यह बोली सुन पड़ी गोली सी लग गई मूर्छित हो मयंक मुखी पर्यंक पर बिजली सी गिर पड़ी, आगत पतिकाओं की आंखें फिर सावन भादों सी मोतियों की लड़ी सी आसुओं की झड़ी लगा दिया, सीरी उसासों के सहारों सेलियो से कलेजा थाम कहने लगी कि अरी । सखिये को पुड़िया और हलाहल का प्याला जलदला ।। बस अब मैं जी चुकी और वे आचुके ।।। मुग्धां प्रवत्स-यत्पति का मोरी मामिनियों ने चौकन्नी हो चित्रमृगी सी टकटकी लगा सोच कर फिर व्याकुल हो कहने लगी कि हाय । मैं कुछ नहीं जानती । तू उसी बिसासी से पूछ । मैं तो अब मरने जाती हूं । मुझे इतना अवकाश कहां जो बताऊं कि वे कहां जायंगे, हां । मेरे प्राण अवश्य सुरपुर जाते हैं वे चाहे जहां जांय, इससे मुझे क्या, अब वे विधुवदनी वियोगिनी बाला अर्थात् प्रोषित्पतिकाओं की कौन दशा कही जाय कि जो इस धुनि को सुन चौंकी, आंखें खुली तो छाती पर हाथ पटक कर बोली कि आह । अब क्या करूं, कहां जाऊं, क्या खाऊं, और कैसे मरूं । न जाने वह निगोड़ा विधाता इतना मेरे पीछे क्यों पड़ा है । मैंने उसका क्या बिगाड़ा था जो ऐसा दुख केवल मुझी को उसने सकेल रखा है, अरेविसासी ब्रह्म क्या तूने ऐसे मेरे मनोहर और सुकुमार अग केवल अनग के बाणों ही के लक्ष्य हेतु बनाया था हाय ए निर्दयी क्या तुझे दया का नाम भी भूल गया जो ऐसे शुक लोचन से पाला डाला, हाय क्या तूने असंख्य तारागणों के सहित संसार सुखद सशांक के अपमान के लिये सूर्य को नहीं संवारा । और कुमोदिनी को शोक मूर्छा से मूर्छित नहीं किया । वाचाल चंचरीक को चम्पे पर चीकित कर कमल कलिका का अनादर नहीं कराया । अथवा स्वाती सुस्वाद सलित के स्वाद से बिचारी चातकी को वर्जित कर सदैव तृषित नहीं रक्खा । या केवल जल भुनकर राख हो जाने ही के अर्थ व्यर्थ परवाने को दीपक का प्रेमी नहीं बनाया । इसी रीत हमसी अभागिनी के काम तमाम करने को काम और पावस का बनाना क्या किसी और का काम है । अरे नहीं, नहीं नहीं ।। पर तू चाहे जो कर इसमें किसी का क्या चारा है । नहीं तो यही समय आज सब को सुख का साज साज रहा है, कोटियों सौभाग्यवती सुसिमुखी अपने प्रियतमों के छाती से लगी मधुर अधरासव पान दान से उन्मत करते उनके हृदयों को कलित कठोर कुचाग्र अंकुश से छेदती, कोई अपने चंचल चारू चखों

के बाण उनके चित्त में चुभाती, कोई रंग महलों में उमंग भरी अनंग के रंग से रंगी केलि कथा कह कलोल करती हुई उनका मन हरती। हाय कोई अटावों पर बैठी सूही सारी की छटा से कारी घटा के बीच आप दामिन बन नैनों की पटा फेर उनके धीरता के गढ़ को कटा करती, कोई वाटिकाओं और उपवनों में अपने प्यारे पी के संग सुरा पीके गले में हाथ डाले टहलती पावस की शोभा देख-देख मगन मन मनमानी चुहलें करती, कभी संग ही संग हिंडोर और झूलों पर सहेलरियों की सहायता से झूलती मलार और कजली सावन की अलापें सुनती सुनाती वा गाती हुई तनिक भी झोंका के लगते ही भयभीत हो चट चिमट कर प्योरे से लिपट जाती और व्यर्थ भी ससगित सी सतराती कभी उसी रस में नाक-भौं सिकोरती, कभी मदनोन्माद से उन्मत हो मुस्कराती और तरह तरह से चोंचले बघारती है।

स्वकीयायें दोनों कंज से कर के ऊपर मिहदी का रंग जमाये, मानो अपने अभागे निष्फल प्रेम के प्रेमीजनों के निज पातिव्रत धर्म्म की छूरी से हलाल किए उनका लहू हाथों में लगा कर अपनी संगदिली और बेदिली, तोतेचश्मी से सब प्रकार के प्रवन्ध में तत्पर हुआ, जो यह आज्ञा हुई थी कि तू सारा देश देख कर शीघ्र समय और देश दशा की विज्ञप्ति कर। अतएव समस्त भूमि भ्रमण कर देखा तो हर देश को हर तरह सुख से भरा सुहावना पाया, प्रजा समूह प्रसन्न मन गुनगान कर महाराज को आशीर्वाद देती है अतएव सविस्तर समाचार यो निवेदन है, कि गवई गांव में किसानों के खेतों में धान, जडहन, सावां, कांकुन, कोदो, मकरा, मकाई, ज्वार बाजरा, मूंग, मोथा, उरद, इत्यादि सब शस्य साल भर से भी अधिक सब के खाने भर को भरपूर है, राजकर देने के अर्थ ऊख, कतारे, और प्रौढ़े बहुत हुए है, गृहस्थी और किसनई के कार्य्य के निर्वाहार्थ सनई और पटुओ भी कम नहीं, शीतकाल में शीत से अभीत होने भर को कपास और नमी भी अच्छा है, तेल के लिए तिल और एरन्ड भी कम नहीं, अतिथि के आतिथ्य और मेहमानों की मेहमानदारी तथा बड़े आदमियों के सत्कार, और नज्र के लिए अच्छे जडहनों की भी क्यारियां लहराती कि जिनमें "रानी काजल", राजगोल, राजहंस, शकर चीनी, कनकजीर, नौआब पसन्द, वासमती इत्यादि उत्तम है, व्यापारी कृषिकार भी नील की, मील की मील क्यारी देख मारे मोद के फूले नहीं समाते, योंही कोयरी और काछी भी अच्छी तरकारी और भाजी देख राजी हुए अपनी आराजी में से खीरा, फूट, पिहटा, परवर, खेकसा, कुनरू, कुम्हड़ा, केला, लौआ, नेनुआ, तरोई, भिन्डी, भांटा, भटेस, सेम, सेमा, केवांच, बेड़ा, ग्वालिनी, मरसा, सथनी, गजा, शकरकन्द, जिमीकन्द, अल्वी, बराडा इत्यादि खोदते, तोड़ते, धोते सजाते बेचने के लिए जाते। ग्रामीण दीन

जनों की स्त्रियां नवीन कोपले, चकौड़ की तोड़ और दुदी प्रथरी, पोई और अंठगंठवा इत्यादि के शाक ऊसरों से नोच खसोट और खोट लाती, इसी रीत तालों में से भी करेमुआ और गिडनी, बनचौरैया, अमलोनी, तथा गाती हुई खेतों में निराती भी लहेसुआ, सुरूआरी इत्यादि के शाक लिए आती, कि आनन्द से सपरिवार खाती और एक पंथ दो काज करती प्रमुदित है, घन मानों की बाटिकाओं और बगाचों में आम, इमली, अनार, केले, कैते, कटकर, बडहर, नारियल, नींबू नारंगी, रायकरौंदा, अमला इत्यादि के वृक्ष फलों से लदे ऐसे गरूआ गये कि फेकने को भी नहीं सिराते, कहां तक कहै कि रविशो पर की मिहंदियां भी फलवती हो ऐसी फबी है कि मानों कुरंगलोचनी कामनियों कज से कलित हाथों पर की बुनकीदार मिहदी लगी चित्रदाई की छबि छीन ली। उपवनों में केवटी लताएं श्वेत पुष्पों से ऐसी सोहती कि मानो सुफेद चादन सी ओढ ली है, अमृता (गुर्च) भी मिली वृक्षों मे मुहाती, अमर बौर अर्थात् आकाश बौर ने तो ऐसा बहुतेरे वृक्षों को जकड़ लिया कि जैसे तमाशबीनों का सरबस रस कसबियाँ चरा लेती है कि जिसे देख बिचारे तमाल कामलि सोच में पड़ काले पड़ गए, बबूल अपने स्वणमय सुमन के रक्षा के हेतु चोखे नोकदार कांटों की सांग साज सजग हुए सूमड़े ताड़ आकाश में जा अपने फल फलाये, तो देखा देखी बिल्वने भी कठोर ताई की कोठरी में बैठने के फल से पीले पड़ गये, परन्तु दुद्र व्यवहार से रूष्ट वट फलों के व्याज मारे क्रोध के लाल हो उदारता से बरोंहियों के हाथ पसार कर आरम्भ किया, कि उदार पीपर, पाकर, गजहंड इत्यादि वृक्ष मारे हर्ष के फलों को स्वादिष्ट कर खिलाया, यहां तक कि नीम का फल भी मीठा हुआ, मधूक वा महुआ का फल भी मारे मधुराई के चूने लगा, अब इस ईश्वरीय सत्र (सदाबरत) से परिपूर्णोदर भोजन कर चिड़ियाएं सुख से घोसलों में बैठी टकुर टकुर ताकती और इस लूटालूट का आनन्द देखती। जंगलों के इधर जंगली विहड़ों का डेरा है बैर, मकोय, बनकरौदे, के पके फलों को देख (बैर कटा) यानी उन्नाव ने भी उन्नावी वस्द्र से सजित संतुष्ट किया, जब देखा कि वन्यजन तरकारी खा खाकर अधा गये तो पेडार ने अपने फल पीले कर मानो सोने के वरक पलेटे लग से लटका कर चिड़ियों को ललचाया, तुरन्त मैन फल के फल भी सोने के बताशे बन गये फिर तो समुद्र फल और ढेर भी फलों का ढेर लगा दिया। हर्रा, बहेरा तथा आंवला (अर्थात् त्रिफला) फलों से वृक्ष इस लिए लद पड़े कि किदाचित फलों की बहुतायता से पक्षियों को अजीर्ण न हो जाय, मानो ईश्वरीय औषधालय खुल गया। यद्पित करमा, टिकुरी, कुआंट, श्रवण सावन, अमिलवेत, पलाश, भुनझुनी सिरसा भी फलों से पूर्ण हुए पर इन्हें कौन पूछता

है क्योंकि कन्दमूल इत्यादि के आधिक्य से निरादर किए गए तपस्वी और ऋषिकुमारों से परवरों, खेकसे ढूडर, करेरूये, बिम्ब, इत्यादि लताओं के फल, फल कर फैले हुए सघन द्रुमावलियों ही की अटारी, पर चढ़े पक कर लाल हुए मानो पूर्वोक्त जनों से नेह का नाता दूर कर खग वृन्दों पर स्नेहयुक्त हो प्रवाल समलाल दुकूल से मढे जब नूतन प्रीति प्रात्रों के मुख चुम्बन करने लगे तो गुले अनार के छविधारी बुलबुल खाना के फलों को बुलबुलों ने खाना आरम्भ किया। यद्यपि कपटी इंदारून के फलों ने भी दम्भ कर ऊपर से कैसी ही शोभा को क्यों न धारण किया पर तो भी भीतरी आखोर से निरादर के भाजन हुए; इस दशा में शोभपुज गुञ्ज ललित वेष बनी आन्तरीय कठोरता के कारण मूं काला कर अपने करतब का फल पाकर चिटकने लगी, जब देखा कि इसी रीति रत्ती स्यामताई ले रत्ती (कोडेना) भी चिटका चाहती है कज्जा कजई रंग से लपेटे फलों को खारदार जिरबख्तर पिन्हया कि न तो चिटके न चिड़ियें चोच चलावैं। किवांच ने किमाचींरग की बानात की खोल में फलों को भर रूजली पैदा करने वाली सफूफ उस पर भुरभुराया बिछवावों ने भी अपने पन्जे में चोखे कांटों को बिछुआ लगाया।

न केवल पक्षी ही ऐसे सुखी हुए किन्तु धूलि के नाम भी न रहने से स्वच्छ सुशोभित भूमि, पर्वत, श्रृग गुफा, कन्दरा, दरी कानन, कुन्ज कछार कुल, पुलिन, हरी घास, गुच्छ, गुल्म, कन्द मूल, फल, फूल, की अधिकाई से पशुबृन्द भी आनन्दिर हुए, और संसा साही, श्रृगाल लोमडी, चरखे, लकडबग्घेंवृक, गैंडे इत्यादि तथा पूर्वोक्त पशु उस कुश गंडरा और खर के बीच चले जाते भी नहीं लखाते, कि जिन्हें उनके शत्रु (दीन प्रबल पशु) और व्याधा तथा शिकारी झख मारते हकवा भी कराते पर नहीं पातेमानो उन्हें यह बैरियों से बचने के लिए किला हो गया है। अब नदी, नाले, झरने, सोत, सर, वापी तडाग भी जल स्वच्छ कर शोभा युक्त हुए क्योंकि सरितावों ने समस्त संसार की गर्दगुवार ले जाकर अपार सागर में जाबहाया, और लहर, भंवर, चद्दर, तोड़, छटन, तीक्ष्णधार कम हुई कि पाताल की भी मछलियां पन्न पन्न पर मारती नजर आने लगी, कि नक्र, मकर, ग्राह, सूंस, कछुहें ऊद इत्यादि के भी भोजन में अब कठिनाई न रह गई अतएव वे आनन्दित मन स्वछन्द बिहार करने लगे कोई मेढकी की खोज में नदी कूलस्थ नाना प्रकार की घास तथा नर, नरकुल, बेंत, नदनरई, औरवों का इत्यादि की वेतरों में जो शोभा से भरी है, घुसे खोजते, कोई और कही शिकार की तार में छुपे बैठे है, आकाश में उडती हुई ढहरी धोबइन, तलीचरैया, कौडेनी, चब्मा इत्यादि (वारि बिग) अरबी चिड़ियायें मछलियों पर निशाना साध चब्म से घुस पानी में से शिकार ले चली कि

छंमकरी उनसे भी छीन कर चीभ गई अब फिर वे बेचारी अपनी ताक में लगी, पन बुड्डी, तलहो, बतक, ताल बतकी. कौआरी इत्यादि तो दरियाई घोड़े के समान पानी पर दौड़ आहार कर बिहार करती, तट पर भी जांघिल, जलकाक, करांकुल, कोंज, बक, टिटिहरी, चक्रवाक, सारस, मराल, इत्यादि भी भोजन की कमी न देख मजे में मस्त प्रमुदित घूमते कूलस्थ वृक्षों पर जुर्रे, बाज, बहरी इत्यादि बीरबिहंग भागते चले जाते भी पन्जे से दबूच चोंच से चमडी नोचकर खरगोश का गोश्त खा भूख दूर किये गरीब गौरैयों को गर्व से घूर रहे है, कि हारिल, कबूतर, तोता, तीतर, लवा आदि भी भय के अग्नि में भुन कर मानो लावा या काबब बने जाते है, मुश खोआ किस मजे से छछंदर और घूंस को चैन से चूस-चूस खाकर तृप्त होता है, भुजैटा फनघों को खाता विस्तुइया लील गया, तो नीलकंठ गिरगिट का कण्ठ कर गट से कंठ के भीतर उतार झटपट भागा, दुष्ट कौवे अधमरे रोगी जीते हुए पशुओं के भी चोंच से खोदकर आंखें निकाल मलाई के लड्डू से उदर में उतार गये तो चील्ह चिडियों के अंडों को ओला सा उडा गई, परन्तु साधु गृद्ध गुरूड बक्राब आदि पक्षी केवल मुरदे जीवों के मांस से अपनी उदर पूर्ति कर आनन्द में आंख मूंद ईश्वरध्यानावस्थित है ।

विशाल ताल और झील समूह इस काल कमाल उदारता पर सन्नद हुए मानो निज वपु वृक्ष के फल तुल्य तीनी, बेरा, सिघाडा, सेरूकी, कसेरू, मृणाल इत्यादि से भरे पूरे मानो अब त्यागी व फलाहारी तथा व्रत रहने वाले भक्तों को आश्वासन दे रहे हैं । भगवती वसुन्धरा जैसे वृद्ध रोगी और नवयुवक सयोगी जनों पर मानो दया कर नाना रोगो का नाश करने वाली तथा बल और वीरूयर्थ की वृद्धि करने वाली औषधियों को यथाशतावरी, मूशली, ब्रही, सहदेवी भृगराज, मयूर शिखा रत्नमाला, ईश मूल, पुनर्नवा, कपूरी, हुरहुर, हसंराज आदि को उत्पन्न किया, तैसे ही वियोगी जनों पर भी कृपा कर उनके वियोग के रोग छूटने के अर्थ सिंगिया, कौआरी, कनैल, करियारी इत्यादि प्राण हारक विष (जुह्र कातिल) को प्रकाश किया कि उनके लाल मुकुल गुलेगुलहड की लालित्य को बजाते अपने रंग की शोखी से खून टपकाते मानो आपना खून करने (खुद कशी) का तरीका बताते हुए कहते कि जो हमें खाते वे चटपट मर जाते हैं इसमे आओ और खाओ तथा सांसारिक दुःख एवम् वियोग का सोग दूर बहावो ।

निदानों अब समस्त संसार के जीव मात्र सुखपूर्वक निज निज आहार बिहार से सुखी आनन्द निमग्न भये महाराज का गुनगान करते हैं, जो फल फूल खिलने में देर किये थे खिले, कुछ कसर किसी प्रकार की न रही । राह और मर्ग स्वच्छ

हुए महाराज के चरण कमलों से पवित्र होने के अभिलाषा करते वे राह ताकते, अतएव है महाराजाधिराज ऋतुराज राज महाराज। जो चरण कमल कृपा सौरभाश्रित बसन्त के खिले सुमन सौरभ से वन्चित मतिमन्द मलिन्द उसका दम भरते थे वे कमल कलिका के कारागार में पड़े सुगनध की घुकनी से अम्लाननाओं में दम आ गया है। जिनके त्राहि-त्राहि का पुकार करते मरते है, क्योंकि अपने प्रिय सूर्य के दर्शन बिना कमल के कलित मुकुल केवल सूर्यमुखी के मुकुलों के मुख सूर्य के मुख की अनुहार जान निहार कर आज लौ तो किसी भांति अपने प्राणों को रक्खा, परन्तु अब जो वे भी दसो दिशाओं में दृष्टि देकर सूर्य को न देखा अतएव अपनी अभाग्य की संध्या समय जान समय को न पहचान दिशा भ्रम होने के समान चौकन्ने से सुकुचित सिर नीचे किये अदब से अपने दुख का निवेदन कर रहे हैं, अतएव कब आज्ञा हो कि यद्यपि काली उर्दी की जगी सैन्य अर्थात् स्याम घन घटा समूह की असंख्य पलटने जा चुकी, पर अब वे श्वेत वस्त्रधारी फौज को भी आज्ञा हो कि आवश्यकतानुसार रह जांय, और भगवान प्रभाकर की प्रभा को आने में अटकावन करें, कि जिसमें सूर्य मुखी और कमल के फूल खिले, तथा अपनी मूर्खता का फल पाकर दया योग्य हो गये दीन मधुकर भी दुख हीन हो, तथा मयंक मरीचिकाओं को दरसा कुमोदिनी कामिनी क मुख मुकुल को खिलावे।

बिलायती रामलीला

अनाम

लड़कपन में अपने देश में रामलीला की धूम देखते आया था, इस साल साहब लोगों के देश में रामलीला के बदले बड़ा दिन देखा। अगर पूछो, बड़ा दिन देखकर क्या सीखा, क्या जाना—तो उसका संक्षेप में यही उत्तर दिया जा सकता है, कि बड़ा दिन अंग्रेजों की रामलीला है। त्यौहार के 7–8 दिन पहिले से वे स्टेशनों में लोगों की भीड़, रेल गाड़ी पर भीड़, बेग और पोर्टमण्टों का ढेर—ये सब देख सुनकर समझ लिया, कि बड़ा दिन अंग्रेजों का प्रधान त्यौहार है। बिलायत के प्रधान स्टेशनों में भीड़ तो देखी, पर अत्याचार कुछ भी नहीं है। भैया, यह देखकर अपने देश के स्टेशनों की बात याद आई। टिकट खरीदते वक्त बेइज्जती के डर से कितनी ही दफे तीसरे दर्जे का टिकट खरीद नहीं सका हूं, सिर्फ मैं ही नहीं, कितने ही लोग इस बात का दुःख भोग चुके हैं। सिपाही सन्त्रियों की गरदनिया की बात याद आने से यह सोच मन में उपजता है, कि हम पराधीन हैं, गरदनिया खाने ही के वास्ते जन्मे हैं। अपनी मातृभूमि में बहुत दफे टिकट-मास्टरों के कड़ुए बचन सुन चुका हूं : माल वजन करने वाले साहबों की बेहूदगी की तथा ज्यादती और गार्ड तथा स्टेशन मास्टर बहादुरों का यात्रियों से पशुवत बर्ताव बहुत दफे देख चुका हूं। पर भैया। यहां ये सब कुछ नहीं है। और गाड़ी के कमरों में माल लादने की तरह यात्रियों को भर देते भी नहीं देखा। वह जल्दबाजी, वह तड़ातड़ी, वह हांक पुकार, वह मारपीट कुछ नहीं है। यहां रेल के कारिन्दे मुसाफिरों को प्रसन्न करने के वास्ते सदा तैयार रहते हैं, यात्रियों के सुबीते के लिये कितने सुन्दर प्रबन्ध किये हैं। सब बन्दोबस्तों को देखने से आंखें तर हो जाती हैं। हाय रे स्वाधीन देश की बहार।

इतना फर्क क्यों हुआ। रेलवे कम्पनी के काम के दोष से, बन्दोबस्त की खराबी से, कारिन्दों की शिक्षा के दोष से और हम हिन्दुस्तानियों की

आत्म मर्यादा पर कम निगाह रहने के दोष से—इन चार दोषों से अपने देश में इतनी ज्यादती तथा बेइज्जती सहनी पड़ती है। यहां अगर कुछ थोड़ा सा अत्याचार होता है, तो चारों तरफ शोरगुल की धूम होने लगती है, अखबारों में वह बात चढ़ती है, नालिश फर्याद कितनी ही होने लगती है—सब लोग रेलवे कम्पनी को धिक्कार देते हैं। सो रेलवे वालों को चारों तरफ से बेइज्जत होकर उसी वक्त अपनी भूल सुधारनी पड़ती है। और हमारे देश में बेइज्जती मानो हमारे अंगों का पसीना है, पोछ डालते ही छूट जाती है। अंग्रेजों को हम देवता समझते हैं, सो उनके कर्मों की विरुद्धता क्यों कर सकते है। हम आलस के नवाब हैं, विरुद्धता के वास्ते कलम क्यों चलाने लगे। और कुछ आत्ममर्यादा की समझ भी रहे, तभी न विरुद्धता करने की रुचि हो।

बड़े दिन के अवसर में रेलो में भीड़ तो इस कदर है और हाट बजार तथा दुकानों में भी भीड़ की कमी नहीं है। सर्वत्र सजीवता मालूम होने लगती है। दुकानें मानो मधुमक्खी के खोते बन जाती हैं और उस दुकान रूपी खोतों में आदमियों का झुण्ड मदमक्खियों के दल की तरह सदा सटा रहता है—कभी एक चला जाता है, कि दो गुण्डे आकर उसके स्थान को दखल कर बैठते हैं। यहां खरीदार कौन है। हमारे देश में त्योहारों के वक्त पुरुष खरीद फरोक्त कर लाकर घर वालों को सजाता है। पर यहां की चाल बिलकुल उल्टी है। यहां घरवाली बाजार से चीज वस्तु खरीद लाकर घरवाले को सजाती है। इसी से पूछता हूं, यहां इस अवसर में खरीदार कौन है। अवश्य ही वह सदा की चाल ही दीख पड़ी—खरीदार मर्द के बदले औरत ही है। आज बाजार में औरतों की संख्या पौने सोलह आने कहने से भी अत्युक्ति नहीं होगी। मालूम होने लगा, मन मानो आज औरतों के देश मे घूम रहा है। जो दो एक मर्द दीख भी पड़ते है वे औरतों के समुन्दर में डूब गये है। शायद तुम्हें मालूम है,हाट से खरीद फरोख्त कर लाना यहां औरतों का बुनियादी अधिकार है। शायद मर्दों के भारी कामों में उलझे रहने के सबब से इस हल्के काम का भार औरतों के मत्थे पड़ा है। कोई कोई कहते हैं, वह काम औरतों के वास्ते वक्त गंवाने में सुन्दर वसीला है। जो लोग कुछ सूक्ष्म सोचने वाले है वे कहते है, औरतों में फैशन की समझ अधिक है, वे पसन्द खूब करती हैं, दर करने में भी अच्छी लियाकत दिखाती हैं······ इसी से इन पर वह काम सौंपा हुआ है। चाहे जिस किसी सबब से हो, विलायतिनियां बजार से खुद सौदा खरीद लाना पसन्द करती हैं, और यहां तक भी सुनता हूं कि वे इस काम में मर्दों का कान काटती हैं। यह चाहे जो हो, हाटों में खरीद फरोख्त करने का शौक औरतों में यहां इस कदर तेज हो गया है,

कि उसे एक रोग सा भी कहा जा सकता है। स्त्री अथवा बेटी के सुन्दर पोशाक गहनों से सज-धज कर बाजार में निकलने के बाद से घर के मालिक को भगवान का नाम जपते रहना पड़ता है। विलायत सभ्य देश है, समाज के स्वीकृत काम में बाधा देनी बड़ी भारी असभ्यता है—इसी से कोई चीज चाहे जरूरी या बेमतलब की हो, अथवा अच्छी या बुरी हो, श्रीमती के उसे खरीद लाते ही मर्द को जले जी से सूखी हंसी हंस कर भी उसकी प्रशंसा करनी ही होगी—चाहे पानी में डूबो या आग में जलो, तुम्हें श्रीमती की बहादुरी की जय जयकार करते हुए उसका दाम हाजिर करना ही होगा। विपद की और भी भारी बात यह है, कि किसी चीज के खरीदने में नगद दाम की जरूरत नहीं होती है। दुकान में जाकर चीज को पसन्द करके दाम ठहरा कर मकान का पता दे आने से ही खरीद पूरी हो जाती है। श्रीमती के लौटने के साथ ही साथ अथवा कुछ देर बाद दाम के बिल के साथ चीज वस्तु तुम्हारे घर पर हाजिर हो जाती है। इसी से कहते हैं, विपद भारी है। रोग रफ्ते-रफ्ते इतना कठिन हो गया है, कि इलाज के इजाद के वास्ते अखबारों के सम्पादकों को बीच-बीच में आम लोगों की अर्जियों से दिक होना पड़ता है।

सब शौकी चीजों से कार्ड की बिक्री ही बहुत अधिक है। शायद जानते होंगे, कार्ड क्या चीज है। बड़े दिन और नये साल की खुशी में सब लोग प्यार का नमूना दिखाने को अपने परिचित जनों की सेवा में एक-एक कार्ड भेज देते हैं। मर्द औरत, लड़के लड़की, बूढ़े, जवान, चिड़िया, चारपाया, पेड़, पल्लों, लता, पत्ता आदि की बहुतेरी तरह की सुन्दर तस्वीरों तथा "मेरे प्यार का नमूना" "उम्मीद है, नया साल सुख से कटेगा" इत्यादि सैकड़ों प्रेम और मित्रता सूचक बातें (मोटो) इन कार्डों पर दर्ज रहती हैं। इसमें सन्देह ही नहीं है कि जब कार्ड भेजने का रिवाज पहिले पहिल जारी हुआ था, तब वह वास्तव ही में प्रेम और प्रीति का नमूना था, पर हरेक बात की अधिकाई बुराई करती है, प्रेम में भी ज्यादती होती है। कार्ड भेजने का परिणाम भी वैसा ही हुआ है। आज की तारीख के टाइम्स अखबार में इस बात पर एक प्रस्ताव है—अमेरिका देश का निग्रो जैसे, अपनी कमर में लटकते हुए नरमुण्डों की संख्या जोड़कर अपनी बड़ाई का विचार करता है, बाजार की वेश्या जैसे अपने हाथ के कंगन की तेज कटाक्ष की विजय पताका समझकर घमण्ड से डगमगाती है, वैसे ही इस देश की औरत अपने पाये हुए कार्डों की संख्या गिन कर फूले अंग नहीं समाती है। कहना ही नहीं होगा, कि खासकर नौजवानों में कार्ड भेजने का अत्याचार बेहद हो गया है। कार्ड भेजने की चाल हमारे देश में भी आहिस्ते-आहिस्ते लहराती हुई घुसने लगी है। इस बारे में और भी बहुत कुछ लिखना है।

बिलायती रामलीला, 12 जनवरी

रूपवती, गुणवंती तथा वीर्यवती इंगलैंड भूमि बड़े दिन के अवसर में अति गम्भीर मधुर भाव धारण करती है। मैया । उस आनन्द तथा सुख की मन मोहने वाली लहर में शरीक नहीं हो सका। स्वाधीन जाति के सुख में पराधीन गरीब जाति क्यों कर शरीक हो सकती है। विलायत वालों के घर-घर आज स्वयं लक्ष्मी देवी विराज रही है······विलायत आज खिलें फूलों में सुहावना नन्दन कानन बना है, खिले मंदार की सुगन्ध में चारों ओर गूंज रही है, स्वयं नल कूवर करोड़ों साक्षियों उसके मण्डारी बने हैं, सुन्दर साज से आज उसकी शोभा दुगुनी हो रही है, उसकी कमल नैनी स्त्रियां मानो स्वर्ग की सुन्दरी हैं, धरती को मानो पवित्र करने को उनकी मण्डली इस धरती पर उतरी है। निर्धन, अशक्त, कंगाल हिन्दुस्थानी होकर विलायत वालों के हुओं ऐश्वर्यों की बहार का वर्णन क्यों कर करूं।

मैया, तुमको आज इन सब ब्योरों को देखने का अवार होता है, तो आंसू कभी रोक नहीं सके होते। मन में शौक होता है, कि एक बार भी स्वजन तथा स्वदेशियों को संग में लाकर विलायत दिखा लूं। इस दृश्य को देखने से ही हृदय जितना बढ़ जाता है, जितनी शिक्षा मिलती है, असो क्योंकर कहूं।

रामलीला के उत्सव में हमको अपने इष्ट मित्रों से मिलना होता है, पति परदेश की नौकरी से लौटकर अर्धांगी से मिलता है माता पुत्र का चन्द्रमुख देख कर अपार आनन्द के समुद्र में मग्न होती है। जब ब्रह्म स्वरूप रामचन्द्र की अनन्त लीलायें भारत में मनाई जाती हैं, तब तमाम हिन्दुओं के घर आनन्द का फोहारा छूटने लगता है, विलायत में भी आज वैसा ही सुख का दिन है। सुख की हाट में सुखी जन सुख की खरीद फरोख्त कर रहे हैं, आज के दिन विलायत में एक भी पति स्त्री से अलग नहीं रहता, एक भी स्त्री पति से अलग नहीं रहती, छाया की तरह स्त्री पति के पीछे फिरा करती है, सो विछोह के बाद जो मिलन का अपार सुख होता है, वह विलायतिनि को प्राप्त नहीं होता है। यहां का नियम यह है कि लड़के लड़कियां जिस स्कूल में पढ़ती हैं, वे प्रायः बारहों महीना वहीं रहती हैं। वहीं पढ़ती, खाती तथा सोती हैं। बड़े दिन के त्यौहार में उन लड़के लड़कियों ने घरों को लौटकर गुलजार किया है। पिता, पुत्र, स्त्री, कन्या, भाई, दामाद–सब इस वक्त मिलकर सांसारिक शोक दुःख तथा झगड़ों को भूलकर असल खान्दानी सुख में डूब गये है। पर एक विशेषता यह है कि आनन्द, खुशी, सुख, सन्तोष इनमें से एक भी यहां किसी के घर के बाहर निकलने नहीं पाता। आज मनुष्यों के समाज में उनका बर्ताव दीख नहीं पड़ता है। हमारे देश में त्यौहारों के अवसर में कितने ही आदमियों के घर नाच गान

मुजरे वगैरह हुआ करते हैं, कितने ही धनियों के मकान में पूड़ी-कचौड़ी का बजार लग जाता है, यहां नाच गान अथवा खान पान का विशेष कुछ बन्दोबस्त सब त्योहारों में बड़े दिन के त्यौहार में भी नहीं है। सिर्फ अपने अपने घर में बैठके अच्छा खाना पकाके खाना और आनन्द करना ही यहां देखा जाता है। पराये को खिलाने का काम नहीं है। बड़े दिन पहिले कई दिनों तक चारों ओर शोर गुल खूब ही था, पर आज सब जगह सन्नाटा है। बाहर निकलकर देखा, सड़कों पर बिलकुल सुनसान है, एक भी आदमी चलता-फिरता नहीं है—मानो शहर आदमियों से खाली हो गया है। रेल स्टेशन में जाकर देखा, वहां का फाटक तक बन्द है—जाना आना बिलकुल नहीं है. डाकघर भी बन्द है। आज सब लोग ही अपने अपने घर के अन्दर अपने अपने खानदान के लोगों के साथ आनन्द मना रहे हैं। खान्दानी आनन्द में भोजन का बन्दोबस्त ही सबसे अधिक है। इस दिन खाने का प्रबंध नवाबी ढंग का होता है, सब लोग अपनी अपनी सामर्थ्य के अनुसार पूरा प्रबन्ध करते हैं, पर सब कुछ ही सिर्फ अपने अपने खानदान के लोगों के ही वास्ते होता है, बाहरी लोगों की बात दूर रहे, छोटी सी छोटी चिऊंटी तक को उसमें शरीक होने का अवसर नहीं दिया जाता है। घर के अन्दर आज लड़के लड़कियों की आसमान फाड़ने वाली चिल्लाहट, उनके खेलने-कूदने की आवाज तथा चीज वस्तुओं की झनझनाहट गूंज रही है। जो घर दूसरे दिन सुनसान और बेजान का तथा आदमियों से खाली जान पड़ते थे, वे सब घर भी आज मानो जान पा गये हैं। इस समय पुत्र कन्याओं के वास्ते पिता माता को कुछ खर्च-वर्च भी करना पड़ता है। बड़े-बड़े त्यौहारों में हमारे देश के लड़के नया वस्त्र, नई पुशाक तथा जूता पहिनकर आनन्द से नाचते रहते हैं। इंगलैंड भिन्न देश है, यहां की रुचि भी भिन्न है। बड़ों को मित्रों की सेवा में कार्ड भेजते देखकर लड़कों ने भी वही बात सीख ली है···इनमें भी इसकी ही खूब धूम रहती है। तसबीर वाली किस्से की किताब खरीदना इनका और एक आनन्द का काम है। पिता के कुतुब खाने में जो सब किताबें हैं, जो सब किस्से की किताबें पढ़कर पिता ने लड़कपन में आनन्द उठाया था, उनसे लड़कों को सुख नहीं होता है। नई नई किताबें चाहिये, जो सब किताबें बड़े दिन के वास्ते निकाली गयी हैं, वे ही सब किताबें चाहिए, न मिलने से अबोध लड़के क्रोध के मारे खाना-पीना छोड़कर देते हैं, और बुद्धिमान लड़के चित्त में दुःख मानते हैं। हमारे देश में किसी भी मकान में गीत बाजा होने से मुहल्ले के तमाम आदमी खुशी में शरीक होते हैं और इसके वास्ते उन्हें कुछ खरचना नहीं पड़ता है। यहां गीत बाजा आदि सुनने का शौक होने से थियेटर, औपेरा, पगर्स आदि देखने के बिना कोई दूसरा उपाय नहीं है।

और उन सब स्थानों में जाने की स्वाधीनता दी जाती है, सो खर्च भी होता है। खैर, इस समय लड़के लड़की, युवा युवति, बूढ़े बूढ़ी को अवश्य आनन्द में मग्न देखा जाता है, इसीसे बड़े दिन को इस देशवालों की रामलीला कहा है।

प्रकाशक:—कलकत्ता, 14/1 कोलटोला स्ट्रीट, बंगवासी स्टीम प्रेस में
केवलराम चट्टोपाध्याय द्वारा मुद्रित और प्रकाशित।

निवेदन : "ऋतु चित्र" और "बिलायती रामलीला" को हमने जस-का-तस छापा है सो इन दोनों निबंधों को जैसा लिखा—वैसा बांचिये।

धर्मपत्नी को श्रद्धांजलि

बनारसीदास चतुर्वेदी

मेरी पत्नी का स्वर्गवास 30 सितम्बर सन् 1930 ई०को हुआ था। उस दुर्घटना को अब 51 वर्ष होने आए। इस लम्बे अर्से में कभी भी मैंने उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित नहीं की, यद्यपि एक अपराधी की भांति मैं उन्हें निरन्तर याद करता रहा। "सम्पादक की समाधि" नामक कहानी में मैंने अपना हृदय उंडेल दिया था और उसे इस अध्याय में आगे उद्धृत भी कर रहा हूं। यद्यपि वह कल्पित कहानी ही है तथापि उसमें मेरी हृदयगत भावनाओं का सजीव चित्रण हो गया है।

यह कहना तो गलत होगा कि मैंने जान-बूझकर घर वालों पर कोई अत्याचार किया, पर उनकी उपेक्षा मुझसे अवश्य हो गयी। बात दरअसल यह हुई कि पत्रकारिता से सार्वजनिक जीवन में फंस जाने के कारण मेरा जीवन अन्तर्मुखी होने के बजाय बहिर्मुखी बन गया। मैं सन्तोषजनक ढंग से अपनी गृहस्थी के कर्त्तव्यों का पालन न कर सका। सुप्रसिद्ध अमरीकन लेखक एमर्सन ने शायद मेरे जैसे व्यक्तियों को ध्यान में रखकर कहा होगा, "My love afar is spite at home यानी बाहर वालों से तुम्हारे प्रेम के मानी हैं, घर वालों से विद्वेष।"

मेरा विवाह सन् 1909 को हुआ, पर वास्तविक गृहस्थ-जीवन सन् 1912 में प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार मेरा गृहस्थ जीवन कुल जमा 18 वर्ष रहा। चतुर्थ सन्तान के जन्म के 10–12 दिन बाद प्रसूति में मेरी पत्नी का आकस्मिक देहांत हो गया। यह कैसे दुर्भाग्य की बात थी कि चार बच्चों का पिता होने पर भी मैं प्रसूति नामक बीमारी से परिचित भी न था। तब तक सरोजिनी नायडू अस्पताल की स्थापना नहीं हुई थी। मैंने सुना है कि अपने प्रारम्भ से अब तक सरोजिनी नायडू अस्पताल 20–21 हजार बालक-बालिकाओं को सकुशल

जन्म दे चुका है। सहस्रों माता-पिताओं के आशीर्वाद स्व० हजारी लाल जैन को प्राप्त हैं।

मेरे एकांगी जीवन की भूल से दूसरे युवक कुछ शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। मैं प्रत्येक विवाहित युवक से, जो मेरे सम्पर्क में आता है, "सम्पादक की समाधि" पढ़ने का अनुरोध करता हूं। अपने बाह्य जीवन की चिन्ता में व्यस्त रहने के कारण न मैं अपनी मानस सन्तान (ग्रन्थ इत्यादि) की चिन्ता कर सका और न औरस सन्तान (बाल-बच्चों) की।

आज से 49 वर्ष पूर्व 9 जनवरी सन् 1932 को अपनी एक तुकबन्दी में अपनी स्वर्गीया सहधर्मिणी को इन शब्दों में निमंत्रित किया था। उस दिन पोष शुक्ला 2 थी और मेरी 40वीं वर्ष गांठ—

"जीवन बसंत अवाई आज देखौ प्रियौ,
स्वागत करे को, कूकि कोकिला सुनावौ तुम।
आशालता झूमें मन सुमन प्रफुल्लित हो,
आली बानि माली तिन्हें सफल सजावौ तुम।
जस की जुही की गन्ध जग में पसारिवे कों,
हीतल कर सीतल समीर सरसावौ तुम।
जौ पै छरछन्द में न कविता ह्वै आवौ देवि,
जीवन उद्यान मेजु सविता ह्वै आवो तुम॥
प्रेम रस प्यासे भटकत फिरौ चाहे जितै,
भावन के भूखे वस म्हौं की ही खाऔगे।
सूखि जेहैं सरिता सरोवर विलीग्न ह्वै हैं,
जीवन की आस लै जिते ही तुम जाओगे।
मारग अकेले में दुकेले अब ह्वै हो नाहिं,
साथी बिछुरे को कहूं खोज हूं न पाओगे।
व्याकुलता त्यागि मनीराम धीर धारि अब,
सूखे रस हीन वृथा वासर बिताओगे॥

जैसे ऊपर लिखा है, "सम्पादक की समाधि" मेरी पूरी भावना तथा अनुभव का प्रतीक है! वह इस प्रकार प्रकाशित हुई थी—

सम्पादक की समाधि

टन नन् न्

"हेलो! हू आर यू प्लीज (आप कौन हैं)।" मैंने टेलीफोन पर पूछा।

"का हल्लो-हल्लो कर रए हो, कुछ पतोऊ है, कै बजे हैं, पांच की गाड़ी से चलनो है, और साढ़े तीन बज चुके। हम तो तुम्हारे मारे तंग हैं।"

"अच्छा-अच्छा ! श्रीमती जी हैं ! लेउ अमैंई आए। फाइनल प्रूफ के लिए रुकना पड़ा।"

"फिनाइल रहन देउ। जल्दी आओ।"

"देशभक्त" का वार्षिक अंक निकालकर मैं मदुरा, विजयनगर, सेतुबन्ध, रामेश्वर इत्यादि की यात्रा पर जा रहा था। कम्पोजीटर और फोरमैन दनादन काम में लगे हुए थे। प्रूफ आया। सरसरी निगाह से एक बार देखकर और सह-कारियों से विदा ग्रहण करके मैं टैक्सी लेता हुआ घर आया। श्रीमतीजी अत्यंत व्यस्त थीं। खैरियत यह थी कि सब सामान उन्होंने बांध रखा था। रात के तीन बजे से उठकर वे तैयारी कर रहीं थीं। भोजन बनाया था, कपड़े ठिकाने रखे थे, नौकर का हिसाब साफ किया था, और न जाने क्या-क्या किया था। और मैं सात बजे सोकर उठा, और डेली पेपर पढ़ने में लग गया था। पहुंचते ही मधुर मुस्कान के साथ उन्होंने खासी डांट बतलाई—"तुम्हें तो कोई अंग्रेजी पढ़ी-लिखी अखबार बांचनबारी स्त्री मिलती तो तुम्हारे होस ठिकाने आउते ! पांच बरस बाद तौ तीरथ करबैको विचार करौ है, सोऊ अब आइ बैठे ! कछु खबरऊ है, का का लै चलनौ है, जब हम न रहैंगे, तब मालूम परैगी, कैसे घर कौ काम होतु हैं।"

मैंने कुछ झेंपकर कहा—"अच्छा, अबकी बार और माफ करो। कृष्ण भगवान ने शिशुपाल के सौ कसूर माफ किए थे, अभी तो हमारे चार दर्जन भी नहीं हुए। रही अखबार बांचनबारी स्त्री की बात, सो हमने एक ईसाइन लड़की के लिए "देशभक्त" में विज्ञापन दे दिया है। सहायक की हमें सचमुच जरूरत है। कोई-न-कोई मिल ही जाएगी। अगर बदसूरत हो, तो तुम भी उससे रोटी-ब्यालू का काम ले लेना, और खूबसूरत हुई तो······ तो अब हम का कहैं।"

"चलौ रहन देउ, तुम्हें जेई बातें सूझिति हैं।"

मद्रास मेल से रवाना हुआ। पत्नी तीर्थयात्रा के लिए जा रही थीं, मैं "जर्नलिस्टिक टूर" पर था, और साथ में चार बरस की लड़की सरला भी थी। तीनों अपने-अपने विचारों में मग्न थे।

पत्नी ने लम्बी सांस लेकर कहा—"अखबार वालों का काम भी बहुत खराब। छुट्टी ही नहीं। अब पांच बरस बाद निकास हुआ है।" वह पिंजरे से छूटे हुए पक्षी की तरह अपने को स्वतंत्र पा रही थी और तुलसीकृत रामायण में से सेतुबंध का प्रकरण उसने पढ़ने के लिए निकाल रखा था। मैं सोच रहा था—विजयनगर में "आंध्र-प्रकाश" के सम्पादक मि० सुब्रह्मण्यम एम० एल० ए० आवेंगे। उनसे अनेक विषयों पर बात करनी है। अगर हो सका तो दो दिन के लिए उतर जाऊंगा। सफर लम्बा है। जर्नलिस्ट एसोसियेशन के विषय

में भी बातचीत कर लूंगा। सरला को रेल में चढ़ते ही भूख लग आई थी, और वह अपनी मां से खाना मांग रही थी। स्टेशन पर जिद करके उसने चार-पांच खिलौने भी खरीदवा लिये थे, और उन्हें वह इधर से उधर रख रही थी। हम तीनों व्यक्ति इतने पास होते हुए भी, एक दूसरे से इतने दूर, कितने परे थे। जाते एक ही तरफ थे, मगर लक्ष्य सबका जुदा-जुदा था।

विजयनगर में मि० सुब्रह्मण्यम मिले। आखिर ठहरना ही तय हुआ। हम लोग एक सुसज्जित बंगले में ठहरे। श्रीमती जी और सरला को वहां छोड़कर मैं घूमने निकला। इस लेखक से मिला, उस जर्नेलिस्ट से बातचीत की। प्रत्येक स्थान पर डेढ़-दो घंटे लग गए। चाय सम्मान सभी जगह किया गया। घड़ी देखता हूं तो पांच बज चुके थे। मैंने दिल में सोचा, बड़ी देर हो गयी। जल्दी से मि० सुब्रह्मण्यम को लेकर लौटा अपराधी की भांति बंगले पर आया। पत्नी ने कोई शिकायत नहीं की, पर लड़की सरला भला क्यों चूकने वाली थी। "बड़ी देर में आये, हमें क्यों नहीं ले गये, हमारे लिये कछु लाए, और अम्मा भूखी बैठी हैं, और हमारी चिरैया टूटि गयी।"

मैंने पत्नी को डांटकर कहा—"बस इसी से हमारी तुम्हारी लड़ाई होती है। अब तक भूखी क्यों बैठी रहीं। तुलसीदास ने यह किस काण्ड में लिखा है कि भूखी रहकर पति की आत्मा को कष्ट दो।"

मैं यह जानता था कि वह मुझे भोजन कराए बिना स्वयं कभी नहीं खाती थीं, चाहे दिन भर भूखा रहना पड़े, पर फिर भी मैं अपराधी उसे ही समझता था। वह चुपचाप सुनती रही। मैंने भोजन करना प्रारम्भ किया। बीच में मैंने कहा—"भई! यहां से दस-बारह मील दूर एक वृद्ध साधु रहते हैं। बड़े पहुंचे हुए सुने जाते हैं। कहो तो उनके दर्शन करते चलें।"

यह सुनते ही पत्नी के मुंह पर कुछ प्रसन्नता के लक्षण दिखाई दिये। साधु-संतों के प्रति उनके हृदय में स्वाभाविक श्रद्धा थी। उन्होंने कहा—"हां, जरूर-जरूर।"

इस पर मैं बोला—"मगर एक बात और सुनी है। इन साधु महात्मा ने एक कठोर नियम बना रखा है, वह यह कि दो प्रकार के आदमियों से नहीं मिलते, एक तो पत्रकार-अखबार वाले से, और दूसरे स्त्री से।"

यह सुनकर वह निराश हो गयीं। उस समय मुझे एक चालाकी सूझी। मैंने कहा, "देखो! अगर तुम एक बात पर राजी हो जाओ तो सब काम बन जाए। मर्द की पोशाक पहन लो, ऊपर से ओवर कोट डाल लो, साफा बांध लो, और सिख बन जाओ। मैं कह दूंगा कि मैं व्यापारी हूं, और ये पंजाबी टैक्सी ड्राइवर

हैं। मुझसे बहुत मेल-जोल है। इस यात्रा पर रवाना हुआ, तो ये भी तैयार हो गए (मुस्कराकर) कहूंगा बड़े सज्जन आदमी हैं।"

श्रीमती जी कुछ परेशान सी हो गईं। बोलीं—"जि तुमने बुरी सुनाईं। हम मर्दन के कपड़ा कैसे पहनैं। नाहि, नाहि, हम नहीं जायेंगी।"

मगर साधु महात्मा के दर्शनों का मोह ऐसा नहीं था जिसे श्रीमती जी आसानी से छोड़ देतीं। थोड़ी देर बाद राजी हो गयीं। प्रातःकाल में विजयनगर के प्राचीन स्थानों की देखभाल कर तीसरे पहर हम लोग साधु जी के दर्शन के लिए चलने की तैयारी कर रहे थे। कोट-पैंट पहनना श्रीमती जी के लिए आसान काम न था। मैंने कहा—"मैं पहना सकता हूं, नेक टाई भी बांध दूंगा, पर पहनाई देनी पड़ेगी। स्त्री से पुरुष बनाना आसान नहीं। भई, आखिर कुछ न कुछ तो जुर्माना देना ही पड़ेगा।"

पत्नी बोली —"तो हम नहीं जाति।"

ज्यों-त्यों मानकर नेकटाई पहनाकर मैंने उनसे कहा—"देखिये, इस दर्पण में देखिये, आप सुन्दर सिंह टैक्सी-ड्राइवर बन गये या नहीं।"

जब तक वे दर्पण देखें, तब तक मैंने उनका एक चुम्बन ले लिया। सच्ची नाराजी दिखलाते हुए उन्होंने कहा—"बड़े पापी हो। आज एकादशी है। तीरथ के लिए और साधुजी के दर्शन के लिए चल रहे हैं।"

मैंने जवाब दिया—"कोई अन्न की चीज तो मैंने तुम्हें खिलाई नहीं, जिससे तुम्हारा व्रत भंग हो गया हो।"

उन्होंने सिर्फ इतना ही कहा—"चलौ, रहन देव।"

हम लोग बैलगाड़ी से रवाना हुए। रास्ते भर श्रीमती जी मुंह फुलाए बैठी रहीं, शायद इसलिए कि मैं बच्ची की निगाह बचाकर वही भूल दुबारा न कर बैठूं। अफसर की टेढ़ी निगाहें देखकर जूनियर बाबुओं को छुट्टी मांगते हुए डर लगता है, यहां तो तरक्की का सवाल था।

सरला ने कहा—"अरे। अम्मा तो लोग हो गईं।"

तब भी श्रीमती जी के चेहरे पर हंसी न आई। मैं बोला—"तीर्थयात्रा से चाहे जिसको लाभ हो, हमारा तो बड़ा नुकसान हुआ है। कई वर्ष की ब्याही हुई मेहरिया छिन गई।"

सरला भी अपनी अम्मा को मर्दानी पोशाक में देखकर हंसी में लोट-पोट हुई जाती थी। मैंने उसे सावधान किया—"देखो! साधुजी के यहां इनसे अम्मा मत कहना, नहीं तो साधुजी तुम्हें पकड़कर अपनी झोली में डाल लेंगे।"

सरला साधु जी की झोली से कुछ डरी, फिर भी उसने पूछा—"अम्मा से अम्मा क्यों नहीं कहें?"

साधुजी का आश्रम दस-पन्द्रह मील दूर था। पहुंचते-पहुंचते शाम हो गई। छोटा-सा बगीचा था। बीच में एक कुटी थी। द्वार पर एक आदमी मिला। किसान-सा मालूम होता था। पहले उसने अपनी भाषा में कुछ कहा, जिसका हम लोग कुछ भी मतलब न समझ सके। ऐसा प्रतीत होता था कि कोई आदमी लोटे में कंकड़ डालकर बजा रहा हो। सरला उसकी बोली सुनकर हंस पड़ी। मैंने उसे डांट बतायी। फिर उस किसान ने अंग्रेजी में लिखा हुआ एक कागज जेब से निकाल कर दिया। उसमें लिखा था—

अर्थात्—"पत्रकार और स्त्री कुटीर में न आएं।"

सरदार सुन्दरसिंह ने पूछा—"क्यों, क्या बात है?"

"सरदार जी, कोई बात नहीं।" मैंने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया, और फिर एक कागज पर पेंसिल से लिख भेजा—एस० के० भट्टा और सरदार सुन्दर सिंह, और फिर मन में सोचा—"चलो, अच्छी प्रेस सामग्री मिलेगी। वर्षों से जिस साधु से कोई पत्रकार इंटरव्यू नहीं ले सका, उससे आज बातचीत करूंगा, और अखबारों में उस पर एक लेख लिख डालूंगा।"

जिस समय हमें साधुजी ने अन्दर बुलाया, काफी अंधेरा हो चुका था। मैंने सुन्दरसिंह से हंसकर कहा—"बड़े भाग्यवान हो भाई! शाम हो गई है। साधु जी को जरा भी सन्देह नहीं होगा। दिन होता, तो तुम्हारी सारी करतूत खुल जाती। चले हैं कोट-पैंट पहनकर सरदार साहब बनने।

अब जाकर मेरी स्त्री के चेहरे पर जरा सी मुस्कराहट आई। प्रणाम करके हम लोग बैठ गए। अंग्रेजी में बातचीत प्रारम्भ हुई, और घंटे भर तक होती रही। इस बीच में सरदार साहब चुपचाप बैठे मुंह देखते रहे। तत्पश्चात् साधुजी ने पूछा—"आप लोग किस प्रांत के रहने वाले हैं।"

मैंने कहा—"मैं तो भरतपुर राज्य के एक ग्राम का रहने वाला हूं और ये पंजाबी सिख हैं।"

मेरे आश्चर्य का कुछ ठिकाना न रहा जब मैंने सुना कि साधुजी हमारे ग्राम के निकट के ही निवासी हैं। फिर तो हमें उन्होंने अपनी ग्रामीण बोली में बोलना प्रारम्भ किया। सरला कुछ चौकन्नी सी हुई, और सरदार साहब भी कुछ सचेत हो गये। आज बरसों बाद साधुजी को अपनी मातृभाषा में या यों कहिए कि ग्राम्य भाषा में किसी से बोलने का अवसर प्राप्त हुआ था, इसलिए प्रश्न करने पर भी वे अपनी भावुकता को न दबा सके। अब तक वे अपने ग्राम का पता भी किसी को न बतलाते थे, पर आज वे अपने को रोक न सके। उनकी एक लड़की हमारे ग्राम में ब्याही थी। जब उसका नाम पूछा, तो कहा—"सरला"।

मेरी सरला डरी। उसने समझा कि अब साधुजी ने झोली में रखा।

मैंने कहा—"अरे! सरला वह तो हमारे पड़ोस में ही रहती है।" साधुजी का दिल भर आया।

मैंने कहा—"बीस पच्चीस दिन बाद मैं अपने घर लौटूंगा, कहिए तो उससे कुछ कह दूं।"

साधुजी ने एक दीर्घ निश्वास ली और कहा—"क्या कहोगे, कोई कहने की बात भी तो हो।"

साधुजी को भावुकता में देखकर मैंने समझा कि तवा गरम है, जर्नलिस्टिक रोटी सेकने का अच्छा मौका है। पूछा—"महात्माजी। एक जिज्ञासा है। आपने यह नियम क्यों बनाया है कि हम किसी पत्रकार या स्त्री से न मिलेंगे"।

साधुजी ने जवाब दिया—"क्या करेंगे आज सुनकर, आप व्यापारी आदमी हैं, आपको इससे कुछ लाभ न होगा।"

मैंने फिर भी आग्रह किया, तो साधुजी ने यह आत्मकथा सुनाई :

सत्तर वर्ष का हो चुका, आज यह बोझ हलका करना चाहता हूं। यह बात मैंने आज तक किसी से नहीं कही, पर तुमसे कहता हूं। तुम मेरे निकट के हो, इसीलिए मेरा मन विवश हो गया, पर एक शर्त है कि तुम यह बात मेरे मरने के पहले किसी से नहीं कहोगे, यहां तक कि मेरी लड़की से भी नहीं। उसकी माता के प्रति मैंने घोर अपराध किया था।

मैं कुछ चौंका। दिल में ख्याल आया कि साधुजी पहुंचे हुए हजरत मालूम होते हैं। संभव है, इन्होंने कोई हत्या की हो। जासूसी कहानी के लिए अच्छा मशाला मिलेगा। मैंने कहा—"साधुजी महाराज। हम लोग यात्री ठहरे। अंग्रेजी पोशाक जरूर पहन ली है, पर दिल हमारा भारतीय है। धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा है। तीर्थयात्रा पर जा रहे हैं। भला हम विश्वासघात कर सकते हैं। भला हम किसी से कुछ न कहेंगे, आप बेखटके सुनाइए।"

साधुजी ने कहा—"पहले मैं एक दैनिक पत्र का संपादक था। पत्र का नाम नहीं बताऊंगा। हर जगह मेरा नाम छपता था। सभाओं में मेरी पूछ होती थी। "डिनर्स" में मुझे बुलाया जाता था। प्रेस एजेंसी मेरी बीमारी तो क्या, छींकने तक, की खबर देश भर में फैला देती थी। हां, एक बात मैं भूल गया। मेरे एक स्त्री थी, और मैं उसे सदा भुलाये रहता था। वह हिंदी तो पढ़ लेती थी, मगर अंग्रेजी का एक अक्षर भी नहीं जानती थी, इसलिए मैं उसे अशिक्षित और असभ्य समझता था।"

यह सुनकर मैंने सरदार सुन्दर सिंह की तरफ देखा, मानो मौन भाषा में कहा, वह भी तुम्हारी साथिन थी। सुन्दर सिंह ने धीरे से मेरा पांव दबाकर

चुप रहने का संकेत किया। साधु बोल रहे थे—"मैं उससे कहा करता था तुम मेरे लिए उपयुक्त साथी नहीं हो। दो चार बार मैंने उसे डेली न्यूज पेपर सुनाने की कोशिश भी की, पर उसे तुलसीकृत आनन्द में जो आराम आता था, वह अखबार में कभी नहीं आया।" मैं उसे दासी की भांति ही समझता था। मैं उससे अपने कपड़े धुलवाता था, बरतन मजवाता था, पानी भरवाता था और भोजन बनाना तो उसका जन्म सिद्ध कर्तव्य था ही। मैं समझता था कि ईश्वर की ओर से, जीवन भर के लिए मुझे एक अच्छी अवैतनिक दासी मिल गयी है। स्त्रियों की स्वाधीनता के विषय में लिखे हुए मेरे लेख कितने ही पत्रों में उद्धृत हुए थे, और पुस्तकाकार भी छपे थे। पर मैंने यह कभी ख्याल नहीं किया कि मेरी स्त्री को भी कुछ स्वाधीनता चाहिए। जिन दिनों मैं अपने लेख पर दूसरे पत्रों में लीडिंग आर्टिकल देखकर खुश होता था, उन दिनों सरला और उसकी मां जाड़े के कपड़े न बन सकने के कारण बगल में हाथ दबाये घर पर सरदी के दिन काटती थीं। बाहर मैं सूटेड-बूटेड प्लेटफार्म से धारा प्रवाह व्याख्यान देता था, उधर घर पर पत्नी अपनी फटी हुई धोती में पैबन्द लगाती थी। आफिस में मैं सरकार के कठोर शासन की निंदा करता था, और घर पर मेरा शासन उससे कम कठोर न था। जिस दिन मैंने अपना इंटरव्यू तार के द्वारा भारत भर के पत्रों में छपने के लिए भेजी थी, उस दिन घर में तरकारी के लिए भी पैसा नहीं बचा था। और जब मैं अमुक सभा का सभापति होकर गया था, पत्नी ने अपने हाथ के कड़े बेचकर घर के लिए अनाज मंगाया था। जब सरला टाईफाइड ज्वर से पीड़ित थी, मैं घर से सात सौ मील दूर एक पोलिटिकल मीटिंग अटेन्ड कर रहा था, भारतवर्ष के दीन-हीन बच्चों की दुर्दशा पर चार आंसू बहा रहा था—

"दूध पीना तो प्रत्येक बच्चे का जन्म सिद्ध अधिकार है। यद्यपि मेरी पत्नी को अपनी बाली बेचकर बीमार लड़की के लिए विदेशी दवा का प्रबन्ध करना पड़ा था, मगर देशी दूध उसे फिर भी न मिल सका।"

यहां पहुंचकर साधुजी ने एक लम्बी सांस ली। मैं अपराधी की भांति घबराया हुआ था। मैं डर रहा था कि कहीं मेरी स्त्री का हृदय द्रवित न हो जाये। चुनाचे मैंने आंख के इशारे से उन्हें सावधान भी कर दिया।

साधुजी ने एक ठंडी सांस भरकर कहा—"उन दिनों पत्रकार का जीवन बड़ा खतरनाक था। आप व्यापारी आदमी उसका अंदाजा भी नहीं लगा सकते। कभी नौकरी लगती, कभी छूट जाती। महीनों घर पर बेकार बैठा

रहना पड़ा। इस बीच मैं अपनी स्त्री के लगभग सब गहने बेच कर खा गया था। केवल दो गहने रह गये थे—नाक की नथ और पांव के बिछुए। यद्यपि उसके सब गहने मेरे ही काम आये थे, पर मैं उससे बराबर झगड़ा करता रहता। कहता—"तुमने व्यर्थ ही इतना रुपया इनमें फंसा रक्खा है। रुपए होते तो बैंक में जमा होते।" वह यही उत्तर देती थी—"मुझे गहनों का शौक नहीं। गृहस्थी में ये गहने वक्त-बेवक्त काम आ जाते हैं। मैं नहीं चाहती कि तुम किसी के सामने हाथ पसारो। घर में चीज हो, तो उसे रखकर हारी बीमारी में काम निकल सकता है।" इस प्रकार हारी-बीमारी होती रहीं और गहनों से काम निकलता रहा। यद्यपि स्त्रियों के लिए वोटाधिकार पर मैंने बड़े तगड़े लेख लिखे थे, और मेरी मित्र "चाली" की सम्पादिका श्रीमती ज्योतिषमती एम० ए० ने उन पर मुझे खूब बधायी भी दी थी, पर मैंने स्वप्न में भी यह ख्याल नहीं किया कि ज्योतिषमती के लिए वोट पर जितना अधिकार चाहिए कम से कम उतना तो सरला की मां को अपने मायके से लाए हुए गहनों पर है ही।"

साधुजी फिर कुछ रुके और अपने को कुछ संभालकर कहा—"आप नहीं जानते कि पत्रकार का जीवन कितना बाह्य हो जाता है। जनता के सम्मुख बार-बार आने की प्रवृत्ति आन्तरिक आध्यात्मिक भावों को कुचल डालती है। अस्त-व्यस्त जीवन में उसे यह सोचने का अवकाश ही नहीं मिलता कि इस विज्ञापन से जीवन को वास्तविक लाभ भी है या नहीं। मैं समझता रहा कि जिंदगी यों ही कट जायेगी, सरला की मां जीवन भर मेरी सेवा यों ही करती रहेगी, भाग्य में कुछ और ही लिखा था।

"आखिर दुर्भाग्य का वह काला दिन आ ही गया। रात के बारह बजे थे। सर्दी से हाथ-पांव ऐंठे जाते थे, गली-बाजार सब खाली थे। कहीं पर कुत्ता भौंक रहा था, कहीं-कहीं किसी के चलने की आहट सुनाई दे जाती थी। मैं ऐडी-टोरियल लिखकर घर लौटा। पत्नी को कई दिन से ज्वर आ रहा था, पर मैंने उसकी कुछ भी परवाह न की थी। इन्हीं दिनों मेरे यहां दो तीन पत्रकार अतिथि भी ठहरे हुए थे और उनके लिए उस बीमारी के दिनों में भी वह भोजन बनाया करती थी। मैं समझता स्त्रियां बिना कारण के बीमार हुआ करती हैं, और यों ही बिना दवा के तंदुरस्त हो जाती हैं। मैंने पूछा—"कहो कैसी तबियत है, उसने जवाब दिया—"कुछ नहीं, ठीक है।" शरीर जल रहा था। देखा तो ज्वर 104 डिग्री था। घबरा गया। भागा-भागा डाक्टर के यहां पहुंचा। डाक्टर साहब आये। उन्होंने मरीज को देखकर कहा—"ऐडीटर

साहब, आप भी अजब अकलमंद आदमी हैं। अब तक क्या कर रहे थे? इन्हें तो डबल निमोनिया हो गया है और आप ने मुझे अब खबर दी है।" मेरे काटो तो खून नहीं। डबल निमोनिया। डॉक्टर साहब ने नुक्सा लिखा। मैंने जेब में हाथ डाला तो पैसा नहीं। स्त्री ने ठाकुर जी के सिंहासन की ओर इशारा किया। उसके नीचे दबे दो रुपया निकल आये। उन्हें डॉक्टर साहब के हवाले किया। दवा खाने के साथ ही उसका बोल बंद हो गया।

गरीब अपनी मन की बात भी न कह सकी। हां, एकबार सरला की ओर देखकर उसने मेरी ओर जरूर देखा था। सूर्योदय होते-होते मेरा जीवन अंधकार-मय बन गया था। वह हृदयवेधक दृश्य अब भी मेरी आंखों के सामने है। वह मर चुकी थी, परंतु उसके चेहरे पर अब भी पूर्ण शांति थी, मानो उसने मेरे सम्पूर्ण अपराधों को क्षमा कर दिया हो। वह लाल कपड़े पहने हुए थी। ऐसे ही कपड़े वह अपनी मां के घर से मेरे घर लायी थी, वैसे ही कपड़े पहन कर आज वह मेरे घर से सदा के लिए बिदा हो रही थी। मैं फूट-फूट कर रोने लगा। पड़ोसी लोग अर्थी की चिंता में थे। आफिस से वेतन मिलने में दस दिन की देर थी। पागल की तरह मैंने पत्नी के संदूक को टटोला। रामायण में पांच रुपये का नोट मिल गया। तब मुझे ख्याल आया कि प्रतिवर्ष रामायण का पाठ समाप्त कर वह एक रुपया चढ़ाया करती थी, जिसे मैं घोर अंध-विश्वास कहा करता था। इस अंध विश्वास ने ही उस समय मेरी लाज रख ली।

अंत्येष्टि के बाद घर लौटा, तो मुझे पता लगा कि मेरा क्या खो गया है। अब मुझे चिंता थी, तो केवल एक बात की कि स्त्री के फूल त्रिवेणी तक कैसे पहुंचाये जाएं। एक बार उसने कहा था—"मेरी एक बात मानो, तो कहूं। मेरे फूल त्रिवेणी पर पहुंचा देना।" मैंने घोर अंधविश्वास कह कर उस बात को उड़ा दिया था। तीसरे दिन जब मैं चिता की भस्म से फूल बिनने गया तो उसके साथ ही मुझे वह सोने की नथ मिली, जिसे पहनकर वह सौभाग्यवती श्मशान हो गई थी। उस समय मुझे उसकी बात याद आ गयी कि गहना समय-कुसमय काम आता है, और उसका गहना बड़े संकट के समय काम आया। उसने, जब तक वह जीती रही, किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया, आज मरने के बाद भी उसकी खातिर मुझे किसी के सामने हाथ न फैलाना पड़ा।"

संध्या समय जब पंडितजी के साथ पीपल के पेड़ पर घड़ा बांधने तथा दीपक रखने गया, तो पंडितजी ने कहा—"इस दीपक को आप जलाइये और फिर कहिए, मैं इस दीपक को इसलिए जलाता हूं कि जिससे गतात्मा

का मार्ग प्रकाशमय हो।" उस समय मेरे दिल को बड़ा धक्का लगा। कंपकपी–सी आ गई। दीपक हाथ से छूट पड़ा। पंडितजी ने कहा-–"यह क्या, आपका ध्यान किस दिशा में है ?" मैंने कहा—"पंडितजी मेरा ध्यान अब ठीक दिशा में है। जीवन भर जिसके हृदय को जलाकर अपना मार्ग प्रशस्त और उसका मार्ग अंधकारमय बनाता रहा, अब दो पैसे का स्नेहहीन दीपक जलाकर उसके मार्ग को कैसे प्रकाशमय बना सकता हूं ? जो मनुष्य अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए अपने अधीनस्थ प्राणियों के सुख-दुख की चिंता न करता हुआ, उसके व्यक्तित्व को कुचलकर पथ–लिप्सा से आगे बढ़ने का प्रयत्न करता है, वह अधम है, नीच है, पापी है, पामर है।"

साधुजी थोड़ी देर चुप रहे और फिर बोले अब आप समझ गये होंगे, मैं पत्रकारों से क्यों नहीं मिलता। जिनका जीवन सर्वथा बाह्य बन जाता है उनसे मिलकर मैं क्या करूं ? रही स्त्री की बात, सो एक स्त्री पर घोर अत्याचार करने के बाद मैं अब क्या किसी स्त्री को मुंह दिखाने लायक रहा हूं ?"

मैं स्तब्ध रह गया। वृद्ध साधुजी की आंखों में आंसू झलक रहे थे, जिन्हें रोकने का वे निष्फल प्रयत्न कर रहे थे। बिलकुल सन्नाटा था। सरदार साहब की ओर देखूं, तो उन्हें गश आ गया था। भोली-भोली सरला ने, जो अब तक खिलौनों की धरा-उठाई कर रही थी यह देखा, तो वह अकस्मात बोल उठी – "बाबूजी, अम्मा को क्या हुआ, देखो।"

सारा भंडाफोड़ हो गया। साधुजी ने आंखें मूंद लीं। हाथों से मुंह ढंक लिया और कहा—"आप ने मेरे साथ विश्वासघात किया, आप स्त्री को यहां क्यों लाए ? मालूम होता है, आप भी कोई चालाक पत्रकार हैं। आप की यह ऊपरी सज्जनता के भीतर अधमता इतनी दूर तक चली गयी है। इसका मुझे पता न था। अब आप कृपया करके चले जाइए।"

मैंने सिर्फ इतना ही कहा—"यह अधम अपने भयंकर अपराध के लिए क्षमा याचना करता है, और अपना तुच्छ जीवन आपकी सेवा में अर्पित करता है।"

साधुजी ने कहा—"बस, आप चले जाइये। अभी वक्त नहीं आया।"

साधुजी चुप हो गये। हम लोग लौट आए। सेतुबंध रामेश्वर की यात्रा की और फिर अपने घर वापस आ गये।

कुछ वर्ष बाद मेरी पत्नी भी चल बसी, जिस दिन उनकी मृत्यु हुई अकस्मात उसी दिन विजयनगर की मुहर की मुझे एक चिट्ठी मिली। उसमें लिखा था—"जीवन यात्रा अब समाप्त हो रही है। यह उपवन और यह कुटीर तुम्हारे लिए छोड़े जाता हूं।"

नीचे उन्हीं साधुजी के हस्ताक्षर थे। मैंने दिल में सोचा कि अब वक्त आ गया है।

मैं अब उसी कुटी में रहता हूं। सम्पादक की समाधि बनवा दी है, और मैंने भी यह नियम बना लिया है, दो प्रकार के आदमियों से नहीं मिलता—एक तो पत्रकार, दूसरे स्त्री से।

"इश्क ने गालिब......"

रायकृष्णदास

घास का एक प्रशस्त मैदान जिसमें दूब के अतिरिक्त दूसरे तृण उगने भी न पाते—हरा-भरा और कटा-छंटा। मखमली गलीचे की उपमा उसके लिये पुरानी पड़ चुकी है। चारों ओर सुंदर विस्तृत बगीचा जिसकी देखभाल और रखवाली में कोई कोर कसर नहीं रहने पाती।

मैदान में एक पिता अपने लड़के के लिये गुड्डी उड़ाने का प्रयत्न कर रहा है, किंतु गुड्डी कुछ-कुछ उठ कर गिर-गिर पड़ती है—उसके लिए जितनी हवा की आवश्यकता है, उतनी यहां नहीं मिलती। वह विलायती गुड्डी है, यहां की गुड्डियों से सर्वथा भिन्न। मानों किसी बक्स में से अगल-बगल के पटरे निकाल दिए गए हों कि उसमें से हवा गुजर सके।

बालक जवाहरलाल के लिए जो उपहार भाई जी विलायत से लाए थे, उनमें यह गुड्डी भी थी। किन्तु ब्रितान की समुद्री हवा में उड़ने वाली वह भारी गुड्डी भला आनन्द भवन में कहां उड़ती। पास ही अपने पिता से लगा हुआ मैं भी खड़ा था, जवाहर भाई से तीन बरस छोटा। उन दिनों वे जितने शर्मीले थे उनसे अधिक मैं···

शर्मीलेपन की चर्चा करते हुए एक बात और याद आ गई—उन्हीं दिनों उनका उपनयन हुआ। उस अवसर पर मेरी माताजी ने उन्हें रात्रि भोजन के लिए बुलाया। उस समय वाला उनका बानक आज भी आंखों में झूल रहा है—ऊंची फैल्ट कैप, बड़े-बड़े बादामी चारखानेदार सिल्क की शेरवानी और चूड़ीदार पाजामा। संकोची इतने कि देर तक रहे, फिर भी अपनी ओर से शायद ही कुछ बोले हो। माताजी बातें करती रहीं, वे प्रत्यालाप मात्र। पास ही सकुचा-सकुचा मैं भी बैठा रहा।

पिताजी के साथ मैं, आनन्द भवन के नित्य जाने वालों में से था—किसी दिन भाई जी जवाहर भाई को टेनिस खिलाते, किसी दिन क्रिकेट, किसी दिन कोई और मैदानी खेल। तीन बरस की नन्हीं विजय लक्ष्मी भी आसपास

खेला करती। भृत्यवर्ग उन्हें कहता "नन्हीं बीबी रानी" तो वह अपने नाम के साथ जवाहर भाई को सम्मिलित करके और उसका गीत बना के गाने लगती—"नन्हीं बीबी रानी-ी-ी, नन्हा भैया, राजा-ा-ा।"

समय की पाबंदी के कारण भाई जी अपने व्यस्त वकालती जीवन में से बाल-विनोद के लिये भी समय निकाल लेते। शेष समय के लिये जवाहर भाई का कार्यक्रम घड़ी की तरह निश्चित था। उनके कमरे अलग थे, जहां उनके शिक्षक पढ़ाया करते। उनके पाठ्यक्रम में संस्कृत भी थी। उनकी पुस्तकों में सामवेद की एक बड़ी सुन्दर छपी हुई प्रति आज भी विस्मृत नहीं होती।

उन्हीं दिनों की याद में, कोई चालीस बरस 1941 ई० के अन्त में एक चाय-पानी में जब एक मित्र ने जवाहर भाई से मेरा परिचय कराना चाहा—"आप कृष्णदास को जानते हैं" तो उन्होंने उत्तर दिया "प्रायः शैशव से।" इस बात पर, स्वभावतः उनकी असाधारण स्मृति शक्ति की ओर ध्यान चला जाता है। सभी महान व्यक्तियों की भांति उनके मस्तिष्क में पहुंच कर कोई भी विषय लुप्त नहीं हो सकता था।

1942 ई० के आरंभिक महीनों में वे तीसरी बार भारत कला भवन देखने आए थे। उसके कुछ ही महीने बाद देश में भयंकर अन्धकारमय समय उपस्थित हुआ—जेल से छूटने पर 1946 ई० में जब उनका तूफानी दौरा शुरू हुआ तो वे काशी भी आए और सदैव की भांति कला भवन में भी उनका आगमन रक्खा गया। दिन भर के व्यस्त कार्यक्रम के बाद टाउन हाल की विराट सभा में लम्बा भाषण समाप्त करके जब वे कार से कला भवन की ओर बढ़े तो उन्होंने पाया कि कुछ महिलाएं भीड़ में पड़ गई हैं। अपने स्वाभावानुसार उन्हें बचाने के लिए वे कार से कूद पड़े और कार खाली ही कला भवन पहुंची।

लपक कर मैं कार के फुट बोर्ड पर चढ़ गया और पूछा, जवाहर भाई, आप मुझे कै मिनट देंगे। "आपके जवाहर भाई अभी पीछे हैं", कार में से एक अन्य परिचित स्वर ने उत्तर दिया। मैं उनकी प्रतीक्षा में, पुनः अपार भीड़ में मिल गया। कुछ मिनट बाद वह भी लपके हुए आ पहुंचे उन्हें जिस प्रकार ऐसी भीड़ में घंसना आता था, उसी प्रकार उसमें से निकलना भी। डांटते-फटकारते तीर की तरह अपना रास्ता करते वे चले आ रहे थे कि मैंने अपना सवाल दुहराया पहले तो बिना देखे ही वही तीव्र वाणी, किन्तु उसी क्षण ममतापूर्ण एक दूसरा स्वर उनके कंठ से बहिर्गत हुआ, "अरे तुम हो।" और एक आदेश से भीड़ को भेड़ बनाकर वे कला भवन के भीतर पहुंचे।

कई लम्बे टेबुलों पर कला भवन की सर्वोत्कृष्ट वस्तुएं सजा दी गई थीं कि वह कम से कम समय में पूरा आस्वादन कर ले। उनके पास समय न था किन्तु

निगाह तो थी और अद्भुत स्मृति शक्ति भी, मैं अवाक् रह गया कि 42 ई० के आरंभ में वह जो कुछ देख गए थे वह सब इतनी गरमी सरदी के बाद भी, उन्हें ज्यों का त्यों याद था। उन्होंने प्रत्येक उत्तम वस्तु को तो देखा ही, साथ ही जो कुछ पहले देख गए थे उसे बताते भी गए, ऐसी वस्तुओं को उन्होंने इस प्रकार देखा जैसे पठनीय पुस्तकों के दुहराने का आनन्द लिया जाता है।

सौन्दर्य-प्रेक्षण और आस्वादन उनके स्वभाव का एक विशिष्ट पहलू था। कला भवन के मूर्ति मन्दिर की भारहुत वाली यक्षिणी को, जो शुंग काल का सचमुच एक अप्रतिम उदाहरण है, उन्होंने पहुंचते ही लक्ष्य किया और जब वहां से अपनी सहज फुर्ती के साथ बाहर लौटने लगे तो उन्होंने गरदन मोड़कर जिस प्रकार उसे पुनः आंख भर देखा, स्वयं उनकी वह मूर्ति दर्शनीय थी।

वस्तुतः जवाहर भाई ने भावुक प्रकृति पाई थी और उनकी सबसे बड़ी साधना थी उस स्वभाव को बदल डालना। फिर भी, यद्यपि यह कुसुमादपि मृदुल-स्वभाव वज्रादपि कठोर बन गया था, परन्तु था यह उत्तुंग नगाधिराज हिम-निर्मित ही। जो व्यक्तित्व यदि उत्कृष्ट कवि या कलाकार नहीं तो कम से कम अद्वितीय साहित्य-आलोचक या कला-कोविद तो होता ही—वह इतने कंटकाकीर्ण पथ का कितना सफल पथिक हुआ, यह देखकर चकित रह जाना पड़ता था। 1948 ई० में उन्होंने दिल्ली की एक प्रदर्शनी में भारतीय दूतावासों के लिये आठ-दस चित्र चुने थे। किसी ननु-नच के बिना यह बात कही जा सकती है कि उससे श्रेष्ठ चुनाव किसी भी कलाविद के लिए असम्भव था। वे उच्चतम साहित्य-सृष्टा थे। उनका लिखना श्रम साध्य नहीं। उनके प्रवहमान भाव आप से आप पंक्तियों के रूप में मुखरित होते जाते हैं, जो सुन्दरता से क्रमबद्ध रहते हैं। यदि कहीं कोई बात आगे-पीछे हो भी जाती है तो अगले वाक्य उसे इस प्रकार संभाल लेते हैं कि वह अपने स्थान पर ही फब उठती है और धारा में कहीं-कहीं उच्छल तरंग की भांति बहुत रुचती है, मानों वार्तालाप कर रहे हों। उनके भाषणों की भी यही विशेषता रहती, अपने श्रोताओं से वे प्रायः कहा भी करते—"आप लोगों से बातचीत करूंगा।

उनका एक अपना दृष्टिकोण और मानदंड था। पहला उनके उच्च धरातल के अनुरूप और दूसरा उनके प्रकाण्ड व्यक्तित्व के। इसी असाधारण दृष्टिकोण और मानदण्ड से वह व्यक्तियों और घटनाओं का निरख नाप करते थे। 1942 ई० वाले आन्दोलन के बाद जेल से छूटने पर जहां बड़े से बड़े नेताओं ने उस कांड को गैर-जिम्मेदारी बतलाया और पराभव-मनोवृत्ति से उसकी नाप करते रहे, वहां जवाहर भाई का ही हिस्सा था कि उसकी सारी जिम्मेदारी

अपने ऊपर लेने को तैयार हो गए और उस आन्दोलन को शानदार विजय प्रमाणित करके ही रहे ।

यदि उन्होंने यह मनोवैज्ञानिक साथ ही तथ्यपूर्ण परिवर्तन उपस्थित न किया होता तो हमारे स्वतंत्रता-संग्राम में फिर रोड़ा अटक गया होता और दो ही बरस बाद के भीतर यहां से अंग्रेज विदा न हुए होते । किन्तु इन बड़ी बातों तक ही नहीं, छोटे-छोटे से विषयों में भी उनकी यही नाप-जोख थी ।

स्वतंत्र सरकार बन जाने पर (1947 ई० के आरम्भ में) मैंने उनके सामने कला भवन के लिए बीस लाख की मांग रक्खी । कहने लगे, "बीस लाख से तो मैं बीस विद्यार्थियों को विदेश भेज सकता हूं, मैं उसे जरूरी समझता हूं ।"

"मैं तो अपने काम को जरूरी समझता हूं" किसी दूसरे को मैंने ऐसा उत्तर दिया होता तो बहस छिड़ जाती, परन्तु जवाहर भाई के दृष्टिकोण को इसकी आवश्यकता न थी । उत्तर मिला, "समझना ही चाहिए ।" एकनिष्ठा का मरम वह जानते थे ।

बजाब्तगी और अनुशासन का अडिग पालन करता हुआ भी उनका अंतस उन्मुक्तता के लिए छटपटाया करता था । 1949 ई० में लखनऊ में उन्होंने पुरा-वनस्पति-शास्त्र संस्थान का शिलान्यास किया था । शिलान्यास के लिए जो करनी बनाई गयी थी उसकी मूठ में साठ करोड़ बरस पुरानी शिलित वनस्पति लगाई गई थी । संस्कार पूरा करके जवाहर भाई ने संस्थान के संस्थापक (अब स्वर्गीय और चिर-परिशोध्य) डा० बीरबल साहनी से कहा, "साहनी, इस करनी को तुम यहीं रख लो, अन्यथा यह मेरे यहां से गायब हो जाएगी"। मैं भी वहीं खड़ा था । मेरी ओर इंगित करके कहने लगे, "एक यही हजरत है ।" संयोग से उनके हाथ में एक नन्हा-सा डंडा था । मैंने कहा—और कुछ नहीं तो मैं यह डंडा तराट करने की फिक्र में था । अभी जब आपने भाषण देते हुए इसे जमीन पर रख दिया था तब मैं तजवीज रहा था कि कहीं आप भूल जायें तो मैं इसे तराट कर दूं । "जी हां-ां-ां, बड़े तराट करने वाले आए ।" मेरे पेट में वह लुकुटिया गड़ाते हुए उन्होंने कहा, "अभी तो मैसूर से किसी ने भेजा है इसे" उनकी हार्दिकता और आत्मीयता के मार्ग में कभी रोड़ा न अटकता ।

कोई अच्छी उक्ति सुन कर वे विभोर हो जाते ।

1946 ई० के आरंभ में वे भाई साहब के अतिथि हुए । वहीं रात्रि भोजन के उपरान्त सितार का आयोजन था । उनका वह दिन बहुत ही व्यस्त बीता था, अतएव जब वे कुछ देर सुन चुके, भाई साहब ने उनसे कहा—"जवाहर लाल सो जाओ, बहुत थक गए होगे ।"

"नहीं अभी सितार सुनूंगा, बहुत दिनों से नहीं सुना है।"
उनकी भावुकता ने यह उत्तर दिया। उसी को लक्ष्य करके मैंने कहा—

"इश्क ने गालिब निकम्मा कर दिया,
वर्ना हम भी आदमी थे काम के।"

और वे भी एक लम्बी सांस में दोहरा गए—

"इश्क ने गालिब......"

हिमपात

राहुल सांकृत्यायन

सन् 1957 के प्रथम दिन ही रात को मसूरी में बर्फ पड़ी, लेकिन वह इतनी नहीं थी कि अधिक दिनों तक टिक सकती, 17 जनवरी को 8 इंच बर्फ की बारिश हुई और 19 जनवरी को सारा दिन उससे भी अधिक बर्फ गिरी। 10 जनवरी को सवेरे आकाश बिल्कुल निरभ्र था। हलका नीला रंग, जिसमें सूर्य और भी अधिक चमक रहा था। जमीन पर दो फुट बर्फ बिछी हुई थी मानो छोटे दाने वाली चीनी बिछी हुई हो। मकानों की दीवारों को छोड़कर भूमि का कोई अंश बर्फ से खाली नहीं था। बाड़ के लिए लगाई लोहे की जालियां हिम से मढ़ कर चांदी की बन गई थीं। तार भी रौप्यमय बन गए थे। देवदार, पदम बंज (ओक) जैसे ही कुछ वृक्ष हैं जो यहां की सर्दी में अपने पत्तों को नहीं गिराते। देवदार का गहरा हरा रंग तो जाड़ों में और भी अधिक मोहक मालूम होता है, क्योंकि हरियाली की शोभा में वह सबसे बढ़कर है और ऐसे काल में, जबकि आंखें सब्जी देखने के लिए तरसती हैं। देवदार दिन के 9 बजे तक भी हिममुक्त नहीं हुआ था। उसकी सुई जैसी पत्तियां अपने स्वाभाविक रंग को छोड़कर रूपहली बन गई थीं और पत्ती सहित डालियां हाथ के पंजे की तरह बर्फ के लोंदों से ढकी विचित्र-सी मालूम होती थीं। हमारे घर के सामने के आस्ट्रेलियन खजूर के सारे चौड़े पत्ते सफेद बर्फ के मोटे कम्बल को ओढ़े मानो सर्दी के निवारण का प्रयत्न कर रहे थे। दूसरे दिन भी सबसे ऊपर वाला केवल एक पत्ता हिममुक्त हो पाया, बाकी पत्ते मोटी बर्फ की तह से अब भी ढके थे।

दरवाजे से चण्डालगढ़ी की तरफ नजर दौड़ाने पर एक अद्भुत दृश्य दिखाई देता था। कम्पनी बाग और ऊपर वाली पहाड़ी पर जो सीधे खड़े हरे-हरे शिखरदार देवदार दिखाई पड़ते थे वे सब सिर से पैर तक बर्फ से ढके कुछ दूसरे ही वृक्ष मालूम होते थे। ऐसा प्रतीत होता था कि खम्भों के सहारे विकराल मक्के की बालें लटकाई गई हैं। या पृथ्वी से स्वर्ग के रुपहले विचित्र देवदारू निकले हुए हैं। वे चारों तरफ श्वेतिमा से मढ़े होने के कारण जंगली वृक्षों की

तरह सटे हुए नहीं, बल्कि एक-एक वृक्ष अलग-अलग खड़ा मालूम होता था। श्वेत देवदारों और श्वेत भूमि के बीच में जहां-तहां मसूरी दुमंजिले-तिमंजिले घर खड़े थे। छतों पर हाथ-हाथ मोटी बर्फ थी। हमें तो डर मालूम होने लगा था कि बर्फ के बोझ के मारे छत नीचे गिर पड़ेगी। सचमुच ही यदि सात-आठ इंच और हिमवृष्टि होती तो मसूरी के कितने ही घरों की छतें नीचे आ गई होतीं। मसूरी के बनाने वाले अंग्रेज थे जिन्हें हिमवृष्टि का अनुभव था। यूरोप के मकानों की छतें दीवार से बहुत थोड़ा कोण बनाती खड़ी होती हैं। जिन पर बर्फ टिक नहीं सकती। अधिक कोण छोड़ने पर छतें हिम से बोझिल होने लगती हैं, लेकिन फिर अपने ही बोझ के मारे बर्फ फिसल कर नीचे चली आती है।

पड़ती हुई बर्फ का दृश्य बड़ा मोहक होता है। जो बादल हरद्वार और दिल्ली में पानी की बूंदें बरसाते हैं वे ही बहुत ठण्ड पड़ने पर 6000 फीट के ऊपर की जगहों में बर्फ बनकर गिरने लगते हैं। मसूरी में भी आकाश का तापमान जब तक शून्य डिग्री (सं०) से नीचे नहीं होता, बादल जलवृष्टि ही के रूप में उतरता है। आकाश का तापमान यदि हिम बिन्दु से नीचे हो, लेकिन पृथ्वी पर पहुंचते ही विलीन होकर जल बन जाते हैं। मसूरी में जलवृष्टि निम्न तापमान में बजरी (नरम छोटे-छोटे ओलों) का रूप लेती है। तापमान के और गिरने पर बजरी हिमकणों का रूप लेती है और भी अधिक शीतलता आने पर हिम रूई के फायों का रूप लेता है। हलकी सी हवा चल रही हो तो ये फाए हवा में तैरते हुए तिरछे चलकर भूमि पर उतरते हैं। हिमकणों या फायों के गिरने से पृथ्वी ढकने लगती है। यदि चांदनी रात में हिमवृष्टि हो रही हो तो दृश्य और भी सुन्दर होता है। चांदनी में हिमकणों या फायों का स्वरूप और रंग निखर आता है। चांदनी वैसे भी मोहक होती है, पर इस समय की चांदनी तो सचमुच ही अद्‌भुत होती है।

हिमराशि और हिमपात बड़े सौन्दर्य की वस्तु है, पर इनके दर्शन करने का आनन्द सभी नहीं ले सकते। हरद्वार, ऋषिकेश और देहरादून से मसूरी जैसी हिमपात की भूमि दूर नहीं है, पर हमारे लोगों को प्रायः उसके सौन्दर्य को नेत्रों द्वारा पान करने की लालसा नहीं होती। आज यातायात सुलभ है। रेडियो वाले शाम को ही लोगों को सूचित कर दें कि मसूरी में बर्फ फुट-दो फुट पड़ी हुई है, कल बड़ा सुन्दर समा होगा, तो कितने ही लोग यहां आ सकते हैं। दिल्ली से कार द्वारा आने में पांच घण्टे से ज्यादा नहीं लगेंगे। सहारनपुर से दो घण्टे भी नहीं, और देहरादून से तो पौन घण्टा ही। अब लोगों में कुछ रुचि जगने लगी है और हिमपात देखने के लिए वे सैकड़ों की तादाद में आते हैं। ग्रीष्म में आनन्द लूटने के लिये अधिक लोग यहां आते हैं। वही बात हिमदर्शन के लिए भी लोगों

में आ सकती है, पर हिम का दर्शन साधारण आदमी के बस की बात नहीं है। नीचे का आपका ओवरकोट यहां की सर्दी को रोक नही सकता। यहां और मोटा गरम स्वेटर चाहिए। चमड़े की जर्सी या फुतई अधिक सहायक हो सकती है। मोटे कोट-पैन्ट के अतिरिक्त मोटा ओवर कोट, पैरों में मोटा ऊनी मोजा और फुल बूट चाहिए। कान और सर ढंकने के लिए चमड़े या ऊन की ओपी और हाथों में चमड़े के दस्ताने भी चाहिए।

देखने में नयनाभिराम हिमराशि की श्वेतिमा मन को मोहक मालूम होती है लेकिन यदि आप अपनी जगह से हिलना-डोलना चाहें तो यह मोहकता छू-मंतर हो जाती है। दो फुट मोटी बर्फ एक-दो दिन तक तो इतनी नरम होती है कि जांघ के पास तक आपका पैर उसमें घुस जाता है—मानो दो फुट मोटी कीचड़ में से आप गुजर रहे हैं। कीचड़ में कपड़ा गंदा होता है, उससे अरुचि होती है, पर बर्फ में कपड़ा गंदा होने का डर नहीं है। जब तक वह पिघल कर पानी नहीं होती तब तक न आपका पैर भीग सकता है, न जूता, न पायजामा। परिचित स्थानों में आप जानते हैं कि कहां रास्ता है और कहां गड्ढा, इसलिए बचकर चल सकते हैं। अगर अपरिचित स्थान है तो और भी खतरा सामने है। ऐसी जगह खिसककर आई बर्फ दो नहीं, चार फुट मोटी भी हो सकती है और फिर गले तक आप उसमें गड़ाप हो सकते हैं। ऐसा तजुर्बा अच्छा नहीं मालूम होता। जिस वक्त आसमान बादलों से ढका रहता है, बर्फ आसमान से उतर कर धरती को ढकने का प्रयत्न करती है, उस समय हवा न होने पर भी सर्दी अत्यधिक बढ़ जाती है। यूरोप या रूस के मैदानी इलाकों में बर्फ चाहे कितनी ही मोटी हो लेकिन वहां खड्डों और गड्ढों का डर नहीं रहता। हमारे पहाड़ों में समतल भूमि ढूंढने से नहीं मिलती। इस सर्दी में और ऐसी ऊबड़-खाबड़ भूमि में आदमी का चलने को मन नहीं करता। यही इच्छा होती है—घर में आग जला लो और उसके पास बैठ जाओ।

हिमपात के समय सर्द मुल्कों के लोग बाहर घूमने में आनन्द अनुभव करते हैं। पैरों के तलवे में स्की की लम्बी लकड़ी बांधकर दोनों हाथों में डंडे से वह फिसलने का आनन्द लेते हैं। तरुण-तरुणी होड़ लगाकर एक दूसरे से आगे बढ़ना चाहते हैं। मसूरी जैसे स्थानों में ऐसे समतल स्थान पहले तो है ही नहीं, और हैप्पीवैली के आंगन की तरह के यदि कोई है भी, तो आनन्द लेने वाले आदमियों का अभाव है। दूसरे बर्फानी खेल भी यहां नहीं खेले जाते यह नहीं है कि हिमालय के बर्फानी स्थानों के बच्चे और तरुण हिम का खेल खेलना नहीं जानते। हिमपिण्ड को उठाकर दोनों हाथों से दबा गेंद का रूप दे वह एक दूसरे के ऊपर फेंकते हैं। कहीं-कहीं चमड़े या लकड़ी के पटरे को रख उस पर बैठकर नीचे की

ओर फिसलते हैं । मसूरी के निवासी वस्तुतः बर्फानी स्थान के होते तो हिमक्रीडा के आनन्द से अपने को वंचित न करते । यहां के दुकानदार प्रायः सभी नीचे से आए हुए हैं । चौकीदार, छोटे-मोटे नौकर ही पहाड़ी हैं, वह भी 4000 फुट से नीचे वाले स्थानों से ही आए हैं । इसीलिए उन्हें हिमक्रीडा के आनन्द का अनुभव नहीं है । समय आएगा जब सम्पत्ति और शिक्षा, संस्कृति और यौवन-सुलभ उत्साह के साथ हमारे लोग बर्फ का आनन्द लेने के लिए यहां अधिक संख्या में पहुंचा करेंगे । पर अभी तो वह दूर की बात है ।

हिमपात की खबर सुनकर अब लोगों को उसके देखने की लालसा तो होने लगी है । 9 तारीख को सारे दिन बर्फ पड़ती रही । यह इस साल की ही सबसे बड़ी हिमवृष्टि नहीं थीं, बल्कि 1945 के बाद इतना हिमपात कभी नहीं हुआ । 9 तारीख की रात को हीं रेडियो ने हिमपात की खबर दे दी। देहरादून के कितने ही उत्साही राजपुर से पैदल ही मसूरी पहुंचें । दोपहर के भोजन को कुछ सवेरे ही खतम करके मंगलदेव जी के साथ मैं भी घर से बर्फ का दृश्य देखने निकला । पचास गज चलने पर देखा, हमारे अलसेशियन भूतनाथ आगे-आगे चल रहे हैं । रास्ते में उनका कितने ही कुत्तों से दांत चलाना, खुद घायल होना और दूसरों को घायल करना हमें पसन्द नहीं था, घर लौटाने की बहुत कोशिश की, लेकिन वे लौटे नहीं । अलसेशियन कुत्ता बर्फ का प्राणी है, गर्दन तक बर्फ में धंस कर किलोल करने में उसे बहुत आनन्द आता है । अपने भेड़िये के रंग के बालों को पड़ती हुई बर्फ की तह से ढक लेने में उसे आनन्द मिलता है । हैप्पीवैली मुहल्ले में आने-जाने वाले बहुत कम ही हैं, इसीलिए लोगों के पैरों ने बर्फ को दबाकर रास्ता नहीं बनाया था । हमीं दोनों को रास्ता बनाना था । हमने चार्लविल होटल का रास्ता पकड़ा वहां अछूती बर्फ पर डेढ़-दो सौ गज चलना पड़ा । समतल भूमि में भी ऐसी बर्फ में चलने में थकावट आती, यहां तो चढ़ाई भी थी । सड़क तक पहुंचने में हमें कष्ट और थकावट मालूम हुई । सड़क से आज पचीस-पचास आदमी जरूर गुजरे थे, इसलिए उनके पैरों ने बर्फ को दबाकर एक फुट चौड़ा रास्ता बना दिया था । आमने-सामने से आने पर, किसी को बगल में हाथ भर बर्फ में धंसकर रास्ता छोड़ना पड़ता ।

कुछ ही दूर आगे बढ़ने पर एक बड़ी-सी डाल टूट कर सड़क पर गिरी दिखाई पड़ी । उसने बिजली के तारों को खराब कर दिया था । लोग समझते हैं, आंधी के ही जोर से वृक्ष उखड़ते हैं, डालियां टूटती हैं । नहीं जानते, बर्फ भी ऐसा कर सकती है । फाया-फाया गिरकर वह पेड़ की डालियों पर जमा हो जाती है । यदि जाड़े के आरम्भ होने के पहले ही पत्ता गिराकर नंगे होने वाले वृक्ष हैं तो उनको खतरा नहीं । देवदार, बंज या दूसरे कठिनजीवी पत्ते वाले वृक्षों

पर ये फाए जमकर मनों की हिमराशि बन जाते हैं जिसके भार से डालियां झुक जाती हैं, मात्रा अधिक हुई तो टूट कर गिर जाती है। छोटी-मोटी डालियां तो सैंकड़ों टुटी हुई मिली। एक बड़ा पेड़ भी उखड़कर गिर गया था। वह पहले ही से जरा-सा झुका हुआ था। सैंकड़ों मन बर्फ उसके सिर पर जब पड़ी तो जड़ों ने जवाब दे दिया। दोपहर हो चुकी थी, लेकिन अभी पेड़ों को हिम की श्वेतिमा ने छोड़ा नहीं था। जब-तब वृक्षों के शिखरों से बर्फ के लोंदे गिरते, इस समय की गंभीर नीरवता को भंग करते। मनुष्य तो बर्फ में हिलने डोलने की कोशिश भी करते हैं, पर पशु-पंछी दम मारना भी पसन्द नहीं करते थे। पक्षियों के लिए आसान है कि साढ़े छह हजार फुट की ऊंचाई से दो हजार फुट की ऊंचाई पर चले जाएं और शीत तथा हिमन के आतंक से मुक्त हो जाएं।

बर्फानी मुल्कों में बर्फ के तरह-तरह के खेल खेले जाते है। यहां मसूरी में भी लड़के उसकी गेंद बनाकर एक-दूसरे के ऊपर फेंकते थे। वे इसे होली का हुड़दंग समझते हैं, इसलिए जिस किसी आते-जाते के ऊपर गेंद मारने की कोशिश से बाज नहीं आते। बर्फ की गेंद से न चोट लगने का डर है और न कपड़े के भीगने या मैला होने का। पर अपरिचित के साथ ऐसा बर्ताव करना ठीक नहीं है। बर्फ के पुतले बनाने का भी लोगों को शौक बढ़ चला है। कुल्हड़ी में बहुत ढलानवाली सड़क बर्फ में फिसलने के लिए उपयुक्त थी। यह देखकर हर्ष हुआ कि पटरे के सहारे कुछ लड़के फिसलने का आनन्द ले रहे हैं।

पर्वत पुत्र

महादेवी वर्मा

बादामी रंग के पुराने कागज के टुकड़े पर लिखी हुई रसीद उंगलियों में थामे हुए जब मैं कुलियों के चित्रगुप्त अर्थात् ठेकेदार की ओर से मुंह फेरकर बाहर, बुझने से पहले जल उठने वाले दीपक जैसी संध्या को देखने लगी तब उन्हें अपनी अधीनस्थ आत्माओं का लेखा-जोखा और अपनी महत्ता का वर्णन रोकना पड़ा। कई बार खांस-खांसकर जब वृद्ध महोदय श्रोता की उदासीनता भंग न कर सके तब कुछ आगे की ओर झुके हुए दाहिने कान में मटमैला टूटे निब वाला कलम खोंसकर और टेढ़ी-मेढ़ी उंगलियों में, बिना ढक्कन वाली और पानी मिली हुई फीकी स्याही से भरी दवात लेकर, धीरे-धीरे सीढ़ियों से नीचे उतर गये। और उनके पीठ फेरते ही कितने ही कुली मेरे कमरे के सामने एकत्र होने लगे।

यह डोटियाल संज्ञाधारी जीव भी विचित्र है। नेपाल, भूटान आदि से जो कुली इस ओर आते हैं उनकी विशेषता का मापदण्ड बोझा उठाने की शक्ति मात्र है। उनमें प्रायः छोटे से छोटा कुली भी डेढ़-दो मन का बोझ उठाकर ऊंचे पहाड़ों की मीलों लम्बी चढ़ाई पार कर जाता है। पर रूप में यह सब शिव के बराती हैं—केवल वे कुरूप हैं दीन नहीं, और यह दीन अधिक है कुरूप कम।

कोई टाट का सिला विचित्र पैंजामा और फटे हुए काले खुरदुरे कम्बल का गिलाफ जैसा कुरता गले में लटकाये भालू के समान घूम रहा है। कोई कोपीन-धारी तार-तार फटा सूती कोट पहने, कमर से बोझ बांधने की मोटी रस्सी लपेटे और रूखे खड़े बालों को खुजलाता हुआ सेही जैसा कांटेदार जन्तु जान पड़ता है। किसी के, कठिन एड़ी और ऐंठी फैली उंगलियों वाले पैर सड़क कूटने के दुर्मुठ से स्पर्धा करते हैं और किसी के स्वचरित, मूंज की खुरदरी चट्टी में सिकुड़बंध पंजे की भ्रान्ति उत्पन्न करते हैं।

कोई धूप में बैठकर कपड़ों में से जुएं बीनता हुआ वानर का स्मरण दिलाता है और कोई दूकानदार से मांग-जांच कर मुख तथा हाथ-पैर में मले हुए तेल के कारण जल से बाहर निकले हुए जल-जन्तु की तरह चमकता है। ये भी मनुष्य हैं इसे हम अभ्यासवश ही समझते हैं—इनमें मनुष्य का रूप पाकर नहीं।

ऐसे विविध अद्भुत रूपों की भीड़ देखकर मेरी मौसी तो कोने में दुबक कर बैठ गयी भक्तिनें बाहर देहलीज पर खड़ी होकर विस्मय की मुद्रा से उनका निरीक्षण-परीक्षण करने लगी, क्योंकि दैन्य और विचित्रता का ऐसा समन्वय तो हमारे गांवों में भी नहीं मिलता। मैंने कुछ उदासीन भाव से कहा, "तुम सब जाओ हमारा कुली जंगबहादुर है उसी को भेज दो।"

मेरी बात समझकर उनमें परस्पर देखादेखी होने लगी–भीड़ में से कोई विशेष साहसी बोला, "माई जी ई है जंगिया" मैंने इस नाम में जंगबहादुर को नहीं पहचान पाया, अतः फिर कहा, "जंगबहादुर को बुलाओ।"

वे विस्मित से एक-दूसरे को धकियाने लगे। फिर एक व्यक्ति को आगे ठेलकर दूसरे ने कहा, "यई तो जंगिया बोलता है।" जिसे ढकेला था उसमें अपने कुली के उपयुक्त महत्ता का लेशमात्र न पाकर मैंने सन्देह से प्रश्न किया "क्या नाम है तुम्हारा।" उत्तर मिला—"जंगबहादुर सिंह।"

नाम ने नाम के आधार को ठीक से देखना आवश्यक कर दिया। पर्वतीय पथ और पत्थरों की चोट से टूटे हुए नाखून और चुटीली उंगलियों के बीच में ढाल बनी हुई मूंज की चप्पल मानो मनुष्य को पशु बनाकर भी न देने वाले परमात्मा का उपहास कर रही थी। पांव से दो बालिश्त ऊंचा और ऊनी-सूती पैबन्दों से बना हुआ पैजामा मनुष्य की लज्जा-शीलता की विडम्बना जैसा लगता था। किसी से कभी मिले हुए पुराने कोट में, नीचे के मटमैले अस्तर की झांकी देती हुई ऊपरी तह तार-तार फटकर झालरदार हो उठी थी और अब अपने पहनने वाले को एक झबरे जन्तु की भूमिका में उपस्थित करती थी। अस्पष्ट रंग और अनिश्चित रूप वाली दोपलिया टोपी के छेदों से रूखे बाल जहां-तहां झांककर मैले पानी और उसके बीच-बीच में झांकते हुए सेवार की स्मृति करा देते थे।

"घनी भौंहों के नीचे मुख चौड़ा और नाक कुछ गोल हो गई थी। हंसी से निरन्तर खुले हुए होठों के कोने कान तक फैलकर गाल और कान के अन्तर को छिपा देते थे। छोटी और बिरल मूछों के काली डोरी जैसे छोर मुंह के दोनों ओर झूलकर, छोटे छोटे दांतों से प्रकट होने वाले बचपन का विरोध कर रहे थे। एक ओर संकीर्ण माथे और दूसरी ओर छोटी गोल ठुड्डी से सीमित चौड़े

मुख को, रोकर पोछी हुई सी छोटी आंखें वही सजल झलक देती थी जो रेगिस्तान के जलाशय में सम्भव है। गेहुंआ रंग निरन्तर धूप में रहने के कारण कहीं पुराने तांबे जैसा और कहीं झाईदार हो गया है। बोझ बांधने की गांठ-गठीली पुरानी रस्सी का एक छोर गले की माला बनता हुआ कंधे से लटक रहा था, दूसरा कमरबन्द बनकर कोट के झबरेपन में कहीं छिपा, कहीं प्रकट था, ऐसा ही था वह जंगबहादुर सिंह उर्फ जंगिया। उसे अपने भाई धन सिंह के साथ मेरा सामान लेकर केदारनाथ होते हुए बदरिका, नाथपुरी तक जाना और श्रीनगर लौटना था। एक रुपया प्रतिदिन के हिसाब से प्रत्येक की मजदूरी तय हुई थी जिसमें से एक आना फी रुपया कमीशन ठेकेदार का प्राप्य था।

"तुम्हारा भाई कहां है" पूछते ही "धनिया ओ धनिया" की पुकार मच गयी। पर बार-बार सबके ढकेलने पर भी जो भाई के पीछे ही अड़ा रहा उसे मैंने बिना किसी के बताये ही धन सिंह समझ लिया। जंगबहादुर का चेहरा भी अपने छोटेपन के प्रति इतना सतर्क था कि उसे देखकर किसी पौराणिक अनुज का स्मरण हो आता था। गोल-मटोल कुछ पुष्ट शरीर वाले धनिया की आकृति भी उसके स्वभाव के अनुरूप थी। विरल भूरी भौंहों की सरल रेखा और छोटी नाक की कुछ नुकीली नोक उसकी सरलता का भी परिचय देती थी, और तेजस्विता का भी। होठों का दाहिना कोना कुछ ऊपर की ओर खिंचा-सा रहता था जिससे उसके मुख पर मुस्कराने का भाव स्थायी हो गया था। रंग की स्वच्छता और त्वचा की चिकनाहट से प्रकट होता था कि कुल जीवन की सारी कठोरता उसने अभी नहीं झेली है। टाट के पुराने पैजामे और जीन के फटे कोट ने उसे पराजित सिपाही की भूमिका दे डाली थी जो उसके मुख के भाव के साथ विरोधाभास उत्पन्न करती थी।

पहाड़ के ऊंचे-नीचे रास्ते में मुझे अपना और अपने साथियों का जीवन इन्हें सौंपना होगा और मार्ग में जीवन की सब सुविधाओं के लिए यह मेरे संरक्षण में आ गये हैं, इस विचार ने उन दोनों कुलियों के प्रति मेरे मन में आयोचित ममता उत्पन्न कर दी। कहा—तुम दोनों सामान देख लो अधिक लगे, तो एक कुली और ठीक कर लिया जायेगा।

आगे-आगे जंगिया और पीछे-पीछे धनिया ने कमरे में पैर रखा और मौसी तथा भक्तिन को विस्मित करते हुए वे भारी बंडलों को अनायास उठा-उठाकर बोझ का अनुमान लगाने लगे।

मैं पैदल ही लम्बी-लम्बी पर्वतीय यात्राएं कर चुकी हूं जिनमें सफलता का मूल मंत्र सामान कम रखना ही माना जाता है। अतः इस सम्बन्ध में मुझसे भूल होना संभव नहीं। फिर मैं यह विश्वास नहीं करती कि जिन यात्राओं में खाद्य

सामग्री मिल जाने की सुविधायें हैं, वहां भी घी के पीपे और बिस्कुट के बीसियों टिन ढोते फिरा जाय। हिम के सुन्दर शिखरों की छाया में पोल्सन का बटर और हन्टले पामर्स के बिस्कुट खाना मेरी समझ में कम आता है, पर वहीं लकड़ी कण्डे बटोरकर आलू भूनने और बाटी बनाने का सुख मैं विशेष रूप से जानती हूं। मेरी मौसी अवश्य कुछ अधिक सामान ले जाने की इच्छा रखती थी, परन्तु मेरी छोटी-सी इच्छा को भी बहुत मूल्य देने का उनका स्वभाव है। उनके बेटे जिन तीर्थों में उन्हें नहीं ले जा सकते वहीं मैं ले जा रही हूं, अतः मैं सब बेटों से बड़ी हूं और मेरी बुद्धि सब प्रकार विश्वसनीय है, इस सम्बन्ध में उन्हें कोई सन्देह नहीं था।

इस प्रकार सबके इने-गिने कपड़े, पर सारे बिस्तर, दवा का बॉक्स, कपड़े साफ करने के लिए साबुन आदि आवश्यक वस्तुएं ही साथ थी, जिन्हें जंगबहादुर ने पास कर दिया और दूसरे दिन सवेरे ही हमारी यात्रा प्रारम्भ हुई।

ऐसी यात्रा में चलचित्र के समान जो जीवन दिखाई देता है उससे हम किसी जाति के सम्बन्ध में ऐसा बहुत कुछ ज्ञातव्य जान सकते हैं जो अन्य किसी प्रकार सम्भव नहीं।

घर में व्यक्ति अपने आश्रितों और सेवकों के प्रति अपने व्यवहार को छिपा सकता है, कृत्रिम बना सकता है, परन्तु यात्रा में ऐसा सहज नहीं होता। मनुष्य में जो भी स्वार्थपरता, विवेकहीनता, क्रूरता और असहिष्णुता रहती है वह ऐसी यात्रा में पग-पग पर प्रकट होती चलती है। कुली को पैसे देते समय, उसके विश्राम-भोजन का समय निश्चित करते हुए, साथियों के सुख-दुःख की चिन्ता और सहायता के अवसर पर मनुष्य अपने अंतरतम का ऐसा आभास दे देता है जिससे उसके चरित्र की अच्छी व्याख्या हो सकती है।

एक ओर श्वेत शतदल की पंखुड़ियों की तरह कुछ खुली कुछ बंद, कहीं स्पष्ट कहीं अलक्ष्य पर्वत-श्रेणियों और दूसरी ओर कहीं हरितदल से फैले खेत और कहीं-कहीं गली चांदी जैसे स्रोतों के बीच में जो जीवन गतिशील है उसे देखकर प्रसन्नता से अधिक करुणा आती है।

डांडी में बैठा हुआ कोई लम्बोदर अपने हांफते हुए कुलियों को, "सर्प-सर्प" कहकर इस तरह दौड़ाता है कि उसे देखकर हमें, स्वर्ग पर अधिकार पाकर भी देवता न बन पाने के नहुष का स्मरण हो आता है। किसी डांडी में कोई सम्पन्न घर की शृंगारित-प्रसाधित महिला पर्वत के सौन्दर्य की उपेक्षा कर झपकिया लेती जाती है। किसी में घुटे सिर और सूखी लकड़ी से शरीर वाली कोई वृद्धा, कटुतिक्त अनुपान से उत्पन्न मुद्रा धारण किये और राह में आंख गड़ाये हुए हिलती-डुलती चली जाती है। कहीं कोई धनहीन प्रौढ़ झप्पान में बैठकर

दोनों पांव लटकाये हुए, याचना-भाव से आकाश की ओर ताकता है, कहीं कोई छोटे टट्टू पर विराजमान वीर घोड़े वाले को पूंछ पकड़कर चलने के लिए मना कर रहा है, क्योंकि इस व्यायाम से वह समीत हो जाता है। कहीं डांडी में मृग चर्म बिछाकर बैठे हुए मठाधीश, शंख-झालर लेकर पैदल चलने वाले शिष्यों को देख-देखकर स्वर्गारोहण का सुख अनुभव कर रहे हैं।

इस डांडी, झप्पान, टट्टू आदि से भरे-पूरे दल के अतिरिक्त एक दूसरा दल भी है जिसमें दरिद्रों का ही बाहुल्य है। प्रायः रुपयों के अभाव में इनमें से अधिकांश बिना टिकट ही रेलयात्रा कर आने में निपुण होते हैं। फिर पांच रुपये से लेकर पांच आने तक अंटी में रखकर और गठरी में सत्तू चबेना गुड़ का पाथेय लेकर चलते हैं। जीवित लौटने के साधनों के अभाव में इनकी यात्रा सबसे अन्तिम विदा के उपरांत ही आरम्भ होती है। राह में जहां बीमार हुए साथी छोड़कर आगे बढ़ गए। दो-चार दिन वहां ठहरने से सबका पाथेय और रुपया-धेली चुक जाने का डर रहता है और उस दशा में किसी का भी लक्ष्य तक पहुंचना असम्भव हो सकता है। इसी से वे सब घर से ही ऐसा समझौता करके चलते हैं क्योंकि एक का न पहुंचना तो उसके व्यक्तिगत पाप का परिणाम है पर यदि उसके कारण अन्य भी न पहुंच सकें तो दूसरों को न पहुंचने देने का पाप भी उसके सिर रहेगा।

चट्टी-चट्टी पर इनमें से दो-एक बीमार पड़ते रहते हैं, और कहीं-कहीं मर भी जाते हैं। अंत्येष्टि का काम यात्रियों से मांग-जांच कर सम्पन्न किया जाता है। साधन न मिलने पर गहरा खड्ड तो स्वाभाविक समाधि है ही।

पैदल चलने वालों में कभी-कभी भ्रमण प्रिय टूरिस्ट भी आते-जाते मिल जाते हैं वे यात्रियों के अस्त्र-शस्त्र से लैस तो होते ही हैं उनका पैदल चलना भी मनोविनोद के लिए ही रहता है, क्योंकि अधिकांश के साथ टट्टू रहते हैं। जिन्हें यात्रियों के सुविधानुसार कभी आगे, कभी पीछे चलना पड़ता है। दरिद्र पैदल चलने वालों से न डांडी वाले बोलते हैं न ये फैशनेबिल यात्री।

डांडियों के काफिले में भी मृत्यु अपरिचित नहीं, पर वह कुलियों तक ही सीमित रहती है। कभी किसी कुली को हैजा हो गया, किसी को बुखार आ गया, किसी के गहरी चोट आ गयी। बस तुरन्त दूसरा कुली ठीक कर लिया जाता है और यात्रा अविराम चलती रहती है। बीमार कुली भाग्य पर छोड़ दिया जाता है। जीवित रहा तो जहां से चले थे, वहीं लौटकर दूसरा यात्री खोज लेता है, मर गया तो फेंक देने की सुविधा का अभाव नहीं। डांडियों के साथ सामान ढोने वाले कुली भी रहते हैं, पर उन्हें भी डांडियों के साथ ही दौड़ना पड़ता है।

इन यात्रियों की स्थिति बहुत कुछ ऐसी रहती है जैसे हमारे यहां इक्के वाले की। वह बारह रुपये का टट्टू खरीद लाता है और उसे रात-दिन इस तरह दौड़ाता है कि कम से कम समय में छत्तीस वसूल हो जायं। थके-टूटे टट्टू के मर जाने पर वह बारह में नया खरीदने के उपरान्त भी लाभ में ही रहता है।

यात्री भी एक रुपया प्रतिदिन देकर कुली को खरीदता है, इसलिए लाभ की दृष्टि से तीन दिन का रास्ता एक दिन में तय करने की इच्छा स्वाभाविक है, अन्यथा वह घाटे में रहेगा।

यात्री तो बैठा-बैठा ऊंघता रहता है। पकवान, सूखे मेवे आदि उसके साथ होते हैं, अतः अधिक थकावट या अधिक भूख का प्रश्न ही नहीं उठता, पर वह कुलियों के विश्राम और भोजन के समय में से घटाता रहता है। सवेरे ही कह देता है कि बीस मील रास्ता तय करना होगा। चाहे जिस तरह चलो पर शाम तक इतना न चले पर मजदूरी काट ली जायेगी। और वे बेचारे मनुष्य पशु हांफ-हांफ कर मुंह से फिचककर निकालते हुए दौड़ते हैं।

आश्चर्य तो यह है कि सबल वे ही। यदि उनमें से एक भी भृकुटियां टेढ़ी कर अपने सवार की ओर देखकर साभिप्राय इस सैकड़ों फीट गहरे खड्ड की ओर देखने लगे तो सवार बेहोश हो जायेगा। पर उन्हें क्रोध आये तो कैसे।

इसी स्वर्ग के हृदय में बसी मृत्यु और पवित्रता के भीतर छिपी व्याधि में से हमें भी मार्ग बनाना पड़ा। मैं तो डांडी में बैठती नहीं, दूसरे भी पैदल ही चले। मनुष्य के भाव के समान संप्रेषणीय और कुछ नहीं है इसी से हमारे कुली स्नेहशील साथी बन सके और आज उनकी स्मृति को मैं उस तीर्थ का पुण्य फल ही मानती हूं। उन दोनों के पास दो टाट के टुकड़े और एक फटी काली कमली थी जिसे चौड़ाई की ओर से ओढ़ना कठिन था और लम्बाई की ओर से ओढ़ने पर यदि पैर ढक जाते थे तो सिर का बाहर रहना अनिवार्य था और सिर ढक जाने पर पैरों का बहिष्कार स्वाभाविक हो जाता था।

मलिन बिना धुले कपड़ों में भी उन दोनों भाइयों का स्वच्छता विषयक ज्ञान खो नहीं गया था। चट्टी में सबसे दूर अंधेरे कोने को खोज कर वे कड़कड़ाते जाड़े में कपड़े दूर रख कोपीनधारी बाबाजी के वेश में भात बनाते खाते थे। स्वच्छ कपड़ों के अभाव में आचार की समस्या का यह समाधान निमोनिया को निमन्त्रण है, यह मैं प्रयत्न करके भी उन्हें समझा न सकी।

बर्तन के नाम से प्रत्येक के पास एक-एक लोहे का तसला था जिसमें से एक में दाल बन जाती थी, दूसरे में भात। कभी-कभी दाल का खर्च बचाने के लिए वे झरनों के किनारे खोज कर लिगूणा नाम का जंगली शाक तोड़ लाते और

उसी के साथ स्वाद ले-लेकर कच्ची पक्की मोटी रोटियां खाते थे। मार्ग में आलू के अतिरिक्त कोई हरी तरकारी मिलती नहीं, पर इसे जंगलियों के खाने योग्य विषैली घास समझकर कोई खाने पर राजी नहीं होता था।

एक बार हठपूर्वक शाक का आतिथ्य स्वीकार कर लेने पर उसमें मेरा भी हिस्सा रहने लगा—और फिर तो उसे हमारे व्यंजनों में महत्वपूर्ण स्थान मिल गया।

मार्ग में हम सब उनके पीछे चलते थे, अतः शेष शरीर बोझ की ओट में होने के कारण केवल उनके पैर ही मेरे निरीक्षण की सीमा में रहते थे। धनसिंह की पलकें चाहे संकोच से न उठती हों पर उसके पैर माई के साथ दृढ़ता से उठते थे। जब कभी चढ़ाई पर उनके पंजों का भार एड़ियों पर पड़ने लगता और आगे रखा हुआ पैर पीछे खिसकता जान पड़ता तब मैं बिना उनका मुख देखे ही थकावट का अनुमान लगा लेती थी। परन्तु "जंगबहादुर थक गये हो" पूछते ही विचित्र भाषा में वही परिचित उत्तर मिलता "अस्सा है मां कुद तकलीस नहीं" अच्छा और तकलीफ के अपभ्रंश रूप पर यदि हंसी नहीं आती थी तो स्वर की गम्भीरता के कारण।

जीवन में बहुत छोटी अवस्था से ही मैं मां का सम्बोधन और उसके उपयुक्त ममता का उपहार पाती रही है, परन्तु उन पर्वत-पुत्रों के मां सम्बोधन में जो कोमल स्पर्श और ममता की सहज स्वीकृति रहती थी वह अन्यत्र दुर्लभ रही है।

धनिया तो संकोच के कारण सिर नहीं उठा पाता था, पर जंगिया राह में कई बार घूम-घूमकर हमारी आवश्यकताओं और थकावट का पता लेता रहता था। अन्त में एक दिन उसने अमूल्य वस्तु मांग बैठने वाले याचक की मुद्रा में कहा, 'मां आप आगे चलता तो अस्सा होता हम पीछे देखता है, फिर देखता है, बोझा से गरदन नहीं घूमता। आगे रहेगा तो हम सिर ऊंचा करके देख लेगा—वह गया मां, वह जाता है—और हमारा पांव जल्दी उठेगा।' तब से हम लोग आगे रहने लगे।

आदि-बद्री पहुंचकर धनसिंह चट्टी के एक कोने में जाकर लेट गया और उसे जोर से बुखार चढ़ आया। मैंने अपने होमियोपैथिक दवाओं के बक्स से कोई दवा खोज कर "निरस्त पादपे देशे एरण्डोइपि द्रमाइते" की कहावत चरितार्थ की और भक्तिन चाय का अनुपान प्रस्तुत कर चतुर नर्स के गर्व का अनुभव करने लगी। जगबहादुर को बैठे देख जब मैंने उसे बीमार के पैर दबाने का आदेश दिया तब परिचित संकोच के साथ उत्तर मिला, "मैं बड़ा है मां वह सरम करता है कैसा रहेगा।"

इस शिष्टाचार की बात सुनकर मुझे विस्मय होना स्वाभाविक था। यहां तो एक सम्भ्रान्त परिवार की वृद्धा माता ने बताया था कि उसका लड़का जब तब उस पर हाथ चला बैठता है और मातृत्व की दोहाई देने पर उत्तर मिलता है "वह जमाना गया जब तुम सब पैर पुजाती थी—पैदा किया जो अपने शौक के लिए किया—क्या इसी कारण हम तुम पर चन्दन-चावल चढ़ाते-चढ़ाते जन्म बिता दें।" जब जन्मदात्री के सम्बन्ध में मनुष्य इतना शिष्ट हो उठा है तब सहोदरता विषयक शिष्टता की चर्चा करना व्यर्थ होगा।

पर जंगबहादुर का अनुज इतना प्रगतिशील नहीं हो पाया, अतः बड़े भाई से पैर दबवाना उसे शिष्टाचार के विरुद्ध जान पड़े तो आश्चर्य नहीं।

कुली के बीमार पड़ जाने पर यात्री ठहरते नहीं—चट्टी से या निकट के गांव से दूसरा कुली बुलाकर तुरन्त ही आगे बढ़ जाते हैं इस नियम के कारण उन दोनों भाईयों के सरल सहज स्नेह का जो परिचय अनायास मिल गया वह अन्य परिस्थितियों में सुलभ न हो पाता।

जंगबहादुर जानता था कि छोटे भाई की जगह दूसरा कुली ले लेगा। पर वह उसे छोड़कर चला जाय तो उसकी मां को क्या उत्तर देगा। धनिया न बीमारी की दशा में लौट सकता था, न चट्टी में अकेले पड़े-पड़े अच्छा हो सकता था। कुछ दिन ठहर जाने पर रुपया समाप्त हो जाना निश्चित था पर दूसरा बोझ मिलना अनिश्चित। ऐसी स्थिति में उसे छोड़कर बड़ा भाई कर्तव्यच्युत हुए बिना नही रह सकता। अतः उसने निश्चय कर लिया कि यह सवेरे दो नये कुली बुला लायेगा। और स्वयं धनिया की देखभाल के लिए रुक जाएगा।

धनिया ने भाई के मुख से उसका निश्चय न सुनने पर भी सब कुछ जान लिया था। उसे विश्वास था कि उसका भाई उसे छोड़ न सकेगा, अतः उसकी भी मजदूरी चली जायगी। जो थोड़े बहुत रुपये मिलेंगे वे भी बीमारी में खर्च हो जायेंगे—तब दूसरे बोझ की प्रतीक्षा करना भी कठिन—उठकर बोझ लेकर चलेगा।

सवेरे झरने से हाथ-मुंह धोकर लौटने पर मैंने चट्टी के नीचे वाले खण्ड में जंगबहादुर को दो नये कुलियों के साथ प्रतीक्षा करते पाया और ऊपर धनसिंह को पट्टी से सिर कसकर बोझा संभालते देखा "क्या तुम अच्छे हो गये" सुनकर उसने थकावट से उत्पन्न पसीने की बूंदें पोंछते हुए बताया कि वह चल सकेगा। उसके न जाने से भाई का भी नुकसान होगा।

उन दोनों चचेरे भाइयों के स्नेह भाव ने कुछ क्षण के लिए मुझे मूक कर दिया। मैं दो-तीन दिन वहां ठहर कर उन्हीं के साथ यात्रा आरम्भ करूंगी यह

सुनकर उनके मुखों पर विस्मय का भाव उदय हो आया जिसे देखकर ग्लानि भी हुई और खिन्नता भी। मनुष्य ने मनुष्य के प्रति अपने दुर्व्यवहार को इतना स्वाभाविक बना लिया कि उसका अभाव विस्मय उत्पन्न करता है और उपस्थिति साधारण लगती है।

धर्नसिंह तीसरे दिन अच्छा हो गया और चौथे दिन हम फिर चले।

उन दोनों के पारस्परिक व्यवहार, सौहार्द आदि ने मेरे मन में उनके प्रति जो ममतामय आदर का भाव उत्पन्न कर दिया था वह उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। मेरी कुछ किताबें, दवा का बक्स, बर्तन आदि वस्तुएं भारी थी, अतः उनमें से प्रत्येक उन्हें अपने बोझ में बांधकर दूसरे का भार हल्का कर देना चाहता था।

सवेरे एक-दूसरे से पहले उठने का प्रयत्न करता था जिससे सब भारी चीजें अपने बोझ में बांधने का अवसर पा सकें। एक बताशा देने पर भी एक भाई दूसरे की खोज में दौड़ पड़ता था। कोई देखने योग्य वस्तु सामने आते ही एक दूसरे को पुकारने लगता था। वे दोनों ऐसे दो बालकों के समान थे जिन्हें किसी ने जादू की छड़ी से छूकर इतना बड़ा कर दिया हो।

मार्ग के अन्य कुलियों के प्रति भी उनके व्यवहार में संवेदनशीलता और सहानुभूति ही रहती थी। एक बार पहाड़ से उतरती हुई गाय इतने वेग से मार्ग तक फिसलती चली आयी कि उसके खुर की चोट से एक कुली का पांव घायल हो गया। धर्नसिंह को सामान सौंपने के उपरान्त जंगबहादुर उस लोहू-लुहान पैर वाले कुली को पीठ पर लादकर झरने तक ले गया और हमारे मरहमपट्टी कर चुकने पर उसे डेढ़ मील दूर अगली चट्टी तक पहुंचा, इतना ही नहीं उसे अपना और उसका बोझ भी लाना पड़ा और अंधेरे में ठिठुरते हुए, अपने फटे कपड़ों में लगे रक्त के दाग भी साफ करने पड़े। पर प्रश्न करने वाला उससे एक ही उत्तर पा सकता था, "कुछ तकलीस नहीं अस्सा है।"

धर्नसिंह संकोची होने के कारण बातचीत कम करता था, पर जंगबहादुर जब तक बैठकर अपने माता, पिता, गांव घर आदि की कहीं सुखद कहीं दुखद कथा कहता रहता था।

वह नेपाल के छोटे ग्राम में रहने वाले माता-पिता का अंतिम पुत्र है—जीविका का अन्य साधन न होने के कारण वह बचपन से ही अन्य कुली साथियों के साथ इस ओर आने लगा। गर्मियों के आरम्भ में वे आते और शरद के आरंभ में लौट जाते हैं। किसी को मजदूरी के सिलसिले में कैलास, किसी को पिण्डारी और किसी को बदरी, केदार की यात्रा करनी पड़ती है। ठेकेदार के

पास सबके नाम और नम्बर रहते हैं। यदि कोई कुली लौटकर नहीं आता और समाचार भी नहीं मिलता तो वह मरा समझ लिया जाता है। इसी प्रकार जब कोई सीजन के अन्त में घर नहीं लौटता और न साथियों के द्वारा कोई समाचार भेजता है तब घर वाले भी उसे महायात्रा का यात्री मानकर क्रिया कर्म द्वारा उसका पथ सुगम बनाने का प्रयत्न करते हैं।

जंगबहादुर अनेक बार आपत्तियों में पड़ चुका है, क्योंकि वह अधिक कमाने की इच्छा से दूर-दूर की यात्राएं ही नहीं करता, एक सीजन में कई कई यात्राएं कर डालता है। उसके अनिश्चित जीवन के कारण ही विवाह योग्य कन्याओं के पिता उसे जामाता होने के उपयुक्त नहीं मानते थे। परन्तु दो वर्ष पहले उसे अविवाहित रहने के शाप से मुक्ति मिल चुकी है। वयस्क वधू के माता-पिता थे ही नहीं। सम्बन्धियों ने सोचा—चाहे वर किसी पर्वत-शिखर पर हिम-समाधि लेले चाहे धन कुबेर बनकर लौटे, कन्या रहेगी तो ससुराल ही में, अतः बेचारे अभिभावक तो कर्तव्य मुक्त हो सकेंगे।

पिछले वर्ष जंगबहादुर मजदूरी के लिए आया ही नहीं था, इस वर्ष खेत में कुछ हुआ नहीं और पत्नी ने पुत्ररत्न उपहार दे डाला। अब तो कुछ न कुछ कमाने का प्रश्न उग्र हो उठा।

जब वह घर से चला तब उसका पुत्र दो वर्ष का हो चुका था, पर वह इतना दुर्बल और छोटा था कि पिता उसे गोद में लेने का भी साहस नहीं कर सका। अब वह खाने पीने से बची हुई मजदूरी घर ले जाने के लिए जमा कर रहा है और जो कुछ इनाम में मिल जाता है उससे पुत्र के लिए एक टोपा और कुरता बनाने की इच्छा रखता है। युवती पत्नी ने बार-बार आंखें पोंछते, फटा आंचल फैला-फैलाकर विनती की थी कि भले आदमी के साथ जाना और बोझ लेकर एक बार से अधिक मत चढ़ाई करना। पिता ने पीठ पर हाथ रखकर और आकाश की ओर धुंधली आंखें उठाकर मानों उसे परमात्मा को सौंप दिया था। और मां तो गांव की सीमा के बाहर तक रोती-रोती चली आयी थी। बड़ी कठिनाई से अनेक आश्वासन देने पर भी वह लौटी नहीं, वरन् वहीं एक जरा-जीर्ण पेड़ का सहारा लेकर दृष्टि पथ से बाहर जाते हुए पुत्र को आंसुओं के तार से बांध लेने का निष्फल प्रयत्न करती रही। विदा का यह क्रम तो सनातन था, पर इस वर्ष उस अनुष्ठान में भाग लेने के लिए विकल पत्नी और मौन पुत्र और बढ़ गये थे। जंगबहादुर को परम समर्थ जानकर उसकी विधवा काकी ने भी अपना पुत्र उसे सौंप दिया था, इसी से अब वह ऐसे ही यात्री की खोज में रहता है जो उन दोनों को साथ ले चलें।

बदरीनाथ की ओर मेरी यह दूसरी यात्रा थी, इसी से मैंने कम से कम समय में, प्रशान्त अलकनंदा के तट पर बसी उस अलकापुरी में पहुंच जाने के लिए केदार का पथ छोड़ देना ठीक समझा। पर जब वहां से लौटकर रुद्रप्रयाग पहुंचे, जो उत्ताल तरंगों में ताण्डव करती हुई अलकनंदा के किनारे तूफान में क्षण-भर ठहरे हुए फूल का स्मरण दिलाता था, तब केदार न जाने का पश्चात्ताप गहरा हो गया।

जिन्होंने पांच जल की धाराओं से घिरा और रंग-बिरंगे फूलों में छिपते चरणों से लेकर शून्य नीलिमा में प्रकट मस्तक तक सफेद हिम में समाधिस्थ केदार का पर्वत देखा है वे ही उसका आकर्षण जान सकते हैं। मीलों दूर से ही वह उज्जवल शिखर अक्षरहीन आमंत्रण के समान खुला दिखायी देता है। जैसे-जैसे हम उसकी ओर बढ़ते है वह विस्तार में बढ़ता जाता है और उसकी रजत विद्युत लेखाओं के समान झिलमिलाती हुई रेखाएं स्पष्टतर होती जाती हैं। लौटते समय जिस क्षण वह हमारी दृष्टि से ओझल हो जाता है उस समय हम एक विचित्र अकेलेपन का अनुभव करते है।

रुद्रप्रयाग पहुंचकर कुछ साथी इतने थक गये थे कि इतनी लम्बी चढ़ाई के लिए साहस न बांध सके। वास्तव में बदरीनाथ के पर्वत शिखर से केदार का शिखर केवल ढाई कोस के अन्तर पर स्थित है पर वहां तक पहुंचने में नौ दिन का समय लगता है, "नौ दिन चले अढ़ाई कोस" की कहावत के मूल में सम्भवतः यही सत्य है।

जब मैंने वहां जाने का निश्चय कर लिया तब विशेष थके साथी रुद्रप्रयाग में हमारी प्रतीक्षा और विश्राम करके "एक पंथ दो काज" की कहावत को चरितार्थ करने के लिए प्रस्तुत हो गये। जाने वालों के सामान के लिए एक कुली पर्याप्त था, अतः दूसरे कुली की समस्या का समाधान आवश्यक हो उठा। मेरी व्यक्तिगत इच्छा थी कि दूसरा कुली भी यात्रियों के साथ विश्राम करे और अट्ठारह दिन के उपरान्त हमारे लौटने पर साथ चले।

पर जंगबहादुर मां जी का अट्ठारह रुपया मुफ्त कैसे ले ले पर उसने बहुत संकोच और वरदान याचक की मुद्रा से जो कहा उसका आशय था कि वह मां जी को जान गया है, अतः विश्वासपूर्वक धनसिंह को छोड़कर जा सकता है यहां से श्रीनगर पहुंचकर वह नये यात्री की खोज भी करेगा और माई की प्रतीक्षा भी। सबके लौट आने पर वह धनिया के साथ दूसरी यात्रा करेगा।

जंगबहादुर के स्वार्थ-त्याग पर कोई काव्य चाहे न लिखा जाय, पर मेरे हृदय में उसकी स्मृति एक कोमल मधुर कविता है। जब मैंने जंगबहादुर को अपने साथ चलने का आदेश दिया धनसिंह को रुद्रप्रयाग में विश्राम का, तब

उसकी आंखें अधिक सजल हो आयी व कण्ठ अधिक गद्‌गद हो उठा, यह बताना कठिन है। उसने बहुत साहस से लौट जाने का प्रस्ताव किया था, पर हम सबका विछोह सहना उसके लिए कठिन था। कई दिन बाद उसने अपनी अटपटी भाषा में बताया था, "हम हियां सरक से, अदब से नहीं रोया—फिर दूर जाकर जोर से रोया—सोचा मांजी जाता है और हमारे भीतर कैसा-कैसा तो होन लगा।"

वह यात्रा भी समाप्त हो गई और तब एक दिन हम सबको बस पर बिठाकर वे दोनों भाई खोये से खड़े रह गये। जंगबहादुर ने आंसू रोकने का प्रयास करते-करते कहा "मांजी जीता रहना फिर आना, जंगिया का नाम चीठी भेजना" घनिया सदा के समान पृथ्वी पर दृष्टि गड़ाये, बीच-बीच में टपकते आंसुओं की भाषा में विदा दे रहा था। आज वे दोनों पर्वत पुत्र कहां होंगे सो तो मैं बता ही नहीं सकती, पर उनकी मांजी होकर मुझे जो सम्मान मिला वह भी बताना सहज नहीं।

फतहपुर सीकरी : एक स्वप्न की शेष स्मृतियां

रघुवीर सिंह

नव यौवन उमड़ रहा था। बाल्यकाल के उन विपत्तिपूर्ण दिनों को पार कर उन्होंने यौवन की देहली पर पदार्पण किया। दोनों का ही यौवन काल आने लगा। यौवन ने अकबर के उस सुन्दर गोरे-गोरे चेहरे पर काली-काली रेखाएं अंकित कर अपने आगम की सूचना दी। बरसों की अशांति के बाद पुनः शांति छा रही थी। शांतिपूर्ण वातावरण को पाकर भारत में नव-जीवन का संचार हुआ। शांति-सुधा की घूंट लेकर बूढ़े भारत ने भी अपना चोला बदला। उसने जीर्ण वृद्ध गलित काया को त्याग कर नवीन स्वरूप धारण किया। मुगल साम्राज्य भी यौवन को पाकर इठलाने लगा।

अकबर का यौवन उभर रहा था। बाल्यकाल से ही उसने राज्यश्री की उपासना आरम्भ की थी। बरसों की कठोर तपस्या तथा घोर तप के अनंतर वह अपनी प्रेमिका के चरणों में अर्पण करने के लिए कुछ सामग्री एकत्रित कर चुका था, अनेकों भीषण संग्राम, हजारों पुरुषों का बलिदान करने के बाद ही वह थोड़ा ही साम्राज्य निर्माण कर पाया था किन्तु तपस्या निष्फल न गयी। जिस राज्यश्री को प्राप्त करने में वृद्ध अनुभवी हुमायूं विफल हुआ था, वही राज्यश्री अनुभवहीन नवयुवा अकबर के पैरों में लौटने लगी।

अनन्तयौवना राज्यश्री अपने नये प्रेमी अकबर पर प्रसन्न हुई। अपने उपयुक्त प्रेमी को पाकर उसके हृदय में नयी-नयी उमंगें उठने लगीं। उसके चिरयुवा हृदय में पुनः जागृति हुई। नयी भावनाओं का उसके हृदय रंगमच पर नृत्य होने लगा। अपने पुराने प्रेमियों के दिए हुए आभूषण-शृंगारों से उसने मुंह फेर लिया। उसे नया शृंगार करने की सूझी, नवीन रत्नों के लिए उसने नये प्रेमी की ओर आग्रहपूर्ण दृष्टि डाली; और अकबर······ वह तो अपनी प्रेयसी की आंखों के इशारे पर नाच रहा था।

यौवन मदिरा को पीकर उन्मत्त अकबर राज्यश्री को पाकर अब अधिक मस्त हो गया। आंखों में इस दुहरी मस्ती की लाली छा गई। इतने दिनों के घोर

परिश्रम तथा कठिन आपत्तिपूर्ण जीवन के बाद अपनी प्रेमिका राज्यश्री को पाकर अकबर ऐश्वर्य-विलास के लिये लालायित हो उठा था। वह ढूंढने लगा एक ऐसे अज्ञात निर्जन स्थान को जहां वह अपनी उठती हुई उमंगों और बढ़ती हुई कामनाओं को स्वच्छन्द कर सके।

अकबर का हृदय एक मानव युवा का हृदय था। प्रारम्भिक दिनों की तपस्या उसकी उमड़ती हुई उमंगों को नहीं दबा सकी, उन्हें शांत नहीं कर सकी; विलास-वासना की ज्वाला अब भी अकबर के दिल में जल रही थी, केवल उसकी ऊपरी सतह पर संयम की राख चढ़ गयी थी। परंतु राज्यश्री की प्रेम-मदिरा ने, उसकी तिरछी नजर की इस चोट से उस अग्नि को पूर्ण प्रज्वलित कर दिया। धू-धू करके वह धधक उठी। अकबर का रहा-सहा संयम भी इस भीषण ज्वाला की लपटों में पड़कर भस्म हो गया। पतंगे की नाई अब अकबर भी विलास की दीपशिखा के आस-पास मंडराने लगा।

महान् साम्राज्य की सत्ता तथा सफलता के उस अनुकूल वातावरण में अकबर पर खूब गहरा नशा चढ़ा। उसी नशे में चूर राज्यश्री का प्यारा अकबर इस भौतिक संसार को छोड़कर अब स्वप्न-संसार में विचरने लगा। राज्यश्री के हाथों युवा अकबर ने खूब छककर पी थी वह मादक मदिरा। अब उसी की गोद में बेहोश पड़ा-पड़ा एक स्वप्न देखने लगा। वह स्वप्न क्या था, भारतीय स्थापत्य-कला के इतिहास की एक महान् घटना थी, मध्यकालीन भारतीय गगन का एक देदीप्यमान धूमकेतु था। धूमकेतु का नाई अनजाने ही यह स्वप्न आया और उसी की तरह यह भी एकाएक ही अदृष्ट हो गया। एकाएक विलीन हो गया किन्तु फिर भी संसार में अपनी अमिट स्मृति छोड़ गया। जगत के भूतल पर आज भी उस स्वप्न की कुछ स्मृतियां यत्रतत्र अंकित हैं। ये स्मृतियां इतनी सुन्दर हैं, उनका रहा-सहा, छिन्न-भिन्न जर्जरित स्वरूप भी इतना हृदयग्राही है कि उनको देखकर ही मनुष्य का हृदय द्रवीभूत हो जाता है और कल्पना-शक्ति के सहारे उन परित्यक्त खण्डहरों के पुरातन प्राचीन वैभवपूर्ण दिनों की याद कर उनके उस स्मृति-संसार की सैर करने को दौड़ पड़ता है। जब इन भग्न अवशेषों का, इन परित्यक्त ठुकराई हुई स्मृतियों का स्वरूप भी इतना आकर्षक है तो वह स्वप्न कितना मनोरंजक, सुन्दर तथा उन्मादक रहा होगा—इसका पता लगाना मानवीय कल्पना के लिए भी एक असम्भव अनहोनी बात है। एक अन्तर्हित स्वप्न की मूक दर्शिका, उस अनुभूत नाटक का वह अनोखा रंगमंच, उस परित्यक्ता नगरी से अधिक सुन्दर तथा अधिक शोचनीय वस्तु भारत में ढूंढे नहीं मिलेगी।

उस सुखद स्वप्न का वर्णन करना, उसको चित्रित करना एक कठिन समस्या है। उस स्वप्न की स्मृतियां इतनी थोड़ी हैं, उन दिनों की याद दिलाने

वाली सामग्री का इतना अभाव है कि रही-सही सामग्री पर समस्त स्वप्न का वह अद्भुत विशाल भवन निर्माण करना असंभव हो जाता है। आधुनिक लेखक तो क्या, उस स्वप्न के दर्शक भी, उसका पूरा-पूरा जीता-जागता वृत्तान्त नहीं लिख सके। जिस किसी ने स्वयं यह स्वप्न देखा था. उसे ऐश्वर्य और विलास के उस उन्मादक दृश्य ने उन्मत्त कर दिया; वह आश्चर्य-चकित हो विस्फारित नेत्रों से देखता ही रहा, एकटक ताकता रहा। और जब नशा उतरा, कुछ होश हुआ, तब नशे की खुमारी के कारण लेखक की लेखनी में वह चंचलता, मादकता तथा स्फूर्ति न रही, जिनके बिना उस वर्णन में कोई भी आकर्षण या जीवन नहीं रहता है।

स्वप्न था। मादकता की लहर थी। जोरों से नशा चढ़ गया था। ऐश्वर्य विलास के भयंकर उन्मत्त प्रवाह में अकबर बहा जा रहा था। अकबर एकबारगी स्वप्न-संसार में विचरण करने लगा। राज्यश्री की गोद में पड़ा था; उसे किस बात की कमी प्रतीत होती, फिर भी एक बात बहुत अखरती थी; अपनी गोद सूनी देखकर उसे दुःख अवश्य होता था। अपने अनेकानेक प्यारे-प्यारे सुकोमल बच्चों को निर्दयी कठोर मृत्यु द्वारा छीने जाते देखकर उसका हृदय विकल हो उठता था। क्रूर काल तथा अदृश्य नियति से चिढ़कर वह अपना सिर पीट लेता था, अपनी विवशता पर उसे क्रोध आता था, और वही क्रोध पानी बनकर आंखों की राह टपक पड़ता था।

तालाब लहलहा रहा था, उसके पूर्वी किनारे पहाड़ी पर एक संत संसार से विरक्त बैठे ईश्वर-भक्ति में लीन अपने दिन बिता रहे थे। अकबर ने सोचा कि कुछ पुण्य इकट्ठा कर ले; ईश्वर की ही दो विरोधिनी शक्तियों को आपस में लड़ाकर कुछ लाभ उठावे। दुर्भाग्य एवं क्रूर काल का सामना करने के लिए उसने स्वर्गीय पक्ष को अपनी ओर मिलाने की सोची। अपने विगत जीवन में एकत्रित पुण्य पर भरोसा न कर वह दूसरों द्वारा संचित पुण्य की भी भीख मांगने के लिए हाथ फैलाये निकला।

एक अद्भुत दृश्य था। जो अकबर सहस्त्रों साधु भिखमंगों को राजा बना सकता था, वही आज एक अर्धनग्न तपस्वी के पास भीख मांगने आया। राज्यश्री के लाड़ले अकबर ने तप के सम्मुख सिर झुकाया, तपस्या के चरणों में राज्यश्री ने साष्टांग प्रणाम किया। जिस तपस्या ने सांसारिक जीवन छुड़वाया भौतिक सुखों, मानवीय कामनाओं तथा ऐश्वर्य-विलास की बलि दिलवाई, उसी तपस्या ने अपना संचित पुण्य भी लुटा दिया। जब राज्यश्री अंचल फैलाए भीख मांगने आयी तब तो तपस्वी ने उसकी झोली भर दी। अकबर को मुंह मांगा वरदान मिला। मनोनुकूल भिक्षा पाकर अकबर लौट गया; शीघ्र ही सलीम का जन्म

हुआ; काल की एक न चली, अदृश्य के अभेद्य कवच को पुण्य के पैने शरों ने छिन्न-भिन्न कर दिया।

अकबर ने पुण्य तथा तपस्या की शक्ति देखी, किन्तु उनकी महत्ता का अनुभव नहीं कर सका। राज्यश्री की गोद में सुख की नींद सोते हुए अकबर को तप अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सका। उन्मत्त अकबर की लाल-लाल आंखें शुद्ध श्वेत तप से निकलती हुई आभा को नहीं देख पायीं। साधु के संचित पुण्य को पाकर अकबर का मनोरथ सिद्ध हो गया, परन्तु वह इस बात को नहीं समझ पाया कि यह पुण्य साधु की कठोर तपस्या का फल था; उसने उस स्थान को ही पवित्र समझा। अकबर ने सोचा कि "क्यों न मैं इस पवित्र स्थान पर उस पुण्य भूमि में निवास कर, पुण्य तथा राज्यश्री, दोनों की पूर्ण सहायता प्राप्त करूं। जिससे अपनी समस्त वांछाएं पूर्ण हो सकें। जहां एक बीहड़ बन था, वहीं अकबर ने एक सुन्दर नगरी निर्माण करने की सोची।

निराशा के घोर अंधकार में एकाएक बिजली कोंधी और उतनी ही शीघ्रता के साथ विलीन हो गयी। अकबर ने तप और संयम की अद्वितीय चमक देखी, किन्तु अनुकूल वातावरण न पाकर वह ज्योति अन्तर्हित हो गयी। पुनः सर्वत्र भौतिकता का अंधकार छा गया, किन्तु इस बार उसमें आग की चांदनी फैली। अकबर चपला की उस चमक को देखकर चौंका था, उस आभा की ओर आकृष्ट होकर उस ओर लपका, परन्तु कुछ ही आगे बढ़कर लड़खड़ाने लगा, पुनः मूर्छित हो गया। गिरते हुए अकबर को राज्यश्री ने सहलाया। यौवन, धन और राजमद से उन्मत्त अकबर आशा की उस चांदनी को पाकर ही असंतुष्ट हो गया; एक बार आंख खोलकर उसे निहारा और राज्यश्री की ही गोद में आंखें बंद कर पड़ा रहा। तप और संयम की वह चमक अकबर का नशा नहीं उतार सकी, उसकी ओर लपक कर अकबर अब अंधियारे में न रहकर आशा की छिटकी हुई चांदनी के उस समुज्ज्वल वातावरण में जा पहुंचा था।

अब अकबर पर एक नयी धुन सवार हुई। वह सोचने लगा कि उस पवित्र स्थान में एक नया शहर बसाये, एक ऐसी सुन्दर नगरी का निर्माण करे जहां ऐश्वर्य और विलास की समग्र सामग्री एकत्रित हो, जो नगरी सौन्दर्य और वैभव में भी अद्वितीय हो। मादकता की एक लहर उठ रही थी; स्वप्न संसार मे विचरते हुए अकबर के मस्तिष्क की एक सुनक थी। राज्यश्री के अनन्य प्रेमी अकबर ने अपनी इच्छा पूर्ति के लिये अपनी प्रेयसी का आह्वान किया। अलाउद्दीन के अद्भुत दीपक के भूत की तरह राज्यश्री ने भी अकबर की इच्छा को शीघ्रातिशीघ्र पलक मारते ही पूर्ण करने का प्रण किया।

संसार की उस अनोखी जादूगरनी ने अपनी जादूभरी लकड़ी घुमायी और अल्पकाल में ही आश्चर्यजनक तेजी से बढ़ने वाले उस आम के पौधे की नाईं उस बीहड़ वन के स्थान पर एक नगरी उठने लगी। उन्मत्त अकबर की मस्ती ने, उसकी आंखों की लाली ने उस नगरी को लाली प्रदान की। मस्ताने अकबर के हाथों में यौवन-मदिरा का प्याला छलक पड़ा, कुछ मदिरा ढलक गयी और उन्हीं कुछ छलकी हुई बूंदों ने सारी नगरी को अपने रंग में रंग दिया। जहां दुर्गम पहाड़ियां थीं वहीं लाल भवनों की सुन्दर कतारें देख पड़ने लगीं; उन पहाड़ियों की मस्ती फूट पड़ी, उनके भी उन ऊबड़-खाबड़ कठोर शुष्क कपोलों पर यौवन की लाली झलकने लगी।

सारी नगरी लाल है। मुगल साम्राज्य के यौवन की लाली, अकबर के मस्ताने दिनों की वह अनोखी मादकता आज भी इन छिन्न-भिन्न खण्डहरों में दिखायी देती है। अनन्त यौवना राज्यश्री ने इस नगरी का अभिषेक किया था, यही कारण है कि आज भी यौवन की लाली ने, स्वप्न की उस मादकता ने इन पत्थरों का साथ नहीं छोड़ा। मुगल साम्राज्य के प्रारम्भिक दिनों का वह मदमाता यौवन समय के साथ ही नष्ट हो गया, तथापि आज भी इन रक्तवर्ण महलों को देखकर उन यौवनपूर्ण दिनों की सुध आ जाती है। ज्यों-ज्यों मुगल साम्राज्य का यौवन-मद उतरता गया त्यों-त्यों लाली के स्थान पर प्रौढ़ता की उज्जवल आभा रूपी श्वेतता का दौरदौरा बढ़ता गया। मुगल साम्राज्य की प्रौढ़ता के, उसके आते हुए वृद्धा काल के द्योतक के श्वेत केश प्रथम बार शाहजहां के शासनकाल में दिखायी दिये। दिल्ली के किले के वे श्वेत महल, आगरा का वह प्रसिद्ध उज्जवल मोती और उसी का वह अनोखा ताल, मुगल साम्राज्य के ढलकते हुए यौवन में निकले हुए ही कुछ श्वेत केश हैं।

पानी की तरह धन बहा। श्री से सींचे जाने पर कठोर नीरस ऊसर भूमि में भी अंकुर फूटा। वे वीरान परित्यक्ता पहाड़ियां भी अब सरस हुई, उनका पाषाण हृदय भी पिघल गया। राज्यश्री की जादूभरी लकड़ी घूमी और उन उजाड़ पहाड़ियों में धीरे-धीरे सुन्दर लाल-लाल महलों का एक उद्यान दिखायी देने लगा और उस उद्यान में खिला एक सुन्दर सुगठित श्वेत पुष्प।

यों उस स्वच्छन्द युवा सम्राट ने उन्मत्त होकर अपनी कामनाओं तथा आकांक्षाओं को उद्दाम कर दिया। उसकी विलास-वासना उलंगलास्य-लीला करने लगी। अपने सुख स्वप्न को सच्चा कर दिखाने के लिये सम्राट ने कुछ भी हक नहीं रखा; और इस तरह संसार को और विशेषतया भारत को कला का ऐसा अद्वितीय दृश्य दिखाया, जिसकी भग्नावशेष स्मृतियों को देखकर आज संसार अघाता नहीं है।

वह स्वप्न था और उसी स्वप्न में उस स्वप्नलोक की रचना हुई थी । स्वप्न के अन्त के साथ ही उस लोक का भी पतन हुआ । परन्तु आज भी स्वप्न की, उस स्वप्न लोक की, कुछ स्मृतियां विद्यमान हैं । आओ । वर्तमान को सामने से हटाने वाली विस्मृति-मदिरा का प्याला ढालें और उसे पीकर कुछ काल के लिए इन भग्नावशेषों में घूम-घूमकर उस स्वप्न लोक में विचरें । तब कल्पना के उन सुनहले पंखों पर बैठे उड़ चलेंगे उस लोक में जहां स्वयं अकबर विचरता था ।

चलो ! सैर कर आवें उस लोक की जहां राजमद की कुछ ढलकी हुई बूंदों ने सुन्दर स्वरूप ग्रहण किया है । जहां प्रथम बार मुगल साम्राज्य का यौवन फूटा और जहां मुगल साम्राज्य तथा मुस्लिम सभ्यता ने भारतीय सभ्यता पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न किया । यही वह लोक है जहां एक बढ़ते हुए साम्राज्य तथा नवयुवा सम्राट की भावनाओं को तृप्त करने के लिए राज्यश्री इठलाती थी । यहीं अकबर के हृदयों की विशालता पर मुग्ध होकर समस्त भारत ने एक बार उसके चरणों में श्रद्धांजलि अर्पण की तथा उसे अकबर ने सप्रेम विनीत भाव से ग्रहण किया और भारतीय सभ्यता के सूचक उन आभूषणों से नवजात नगरी का श्रृंगार किया ।

दिल पर पत्थर रखकर, उसकी वर्तमान दशा को भूलकर, चलो उस लोक में, उस काल में, जब उस नगरी को सजाने में, उसको सुशोभित करने में ही भारत-सम्राट रत रहता था; जिसका श्रृंगार करने में ही अपनी सारी योग्यता, अपना समस्त धन एवं सारा कला-कौशल उसने व्यय कर दिया । जन्मकाल से ही सारा संसार उस नगरी पर मुग्ध हो गया और उस सुन्दर नगरी की भेंट करने के लिए अपनी उत्तमोत्तम वस्तुयें लेकर सब कोई दौड़ पड़े । और उस नगरी में घूमकर उन 15 वर्षों के बहुत कुछ इतिहास का, उस युग के महान-महान व्यक्तियों का थोड़ा बहुत पता लग जाता है । अकबर पर राजमद चढ़ा हुआ था, वह स्वप्नलोक में विचरता था, किन्तु फिर भी वह अपने साथियों को नहीं भूला । वह ऐश्वर्य और विलास के सागर में गोते लगाने को कूद पड़ा और साथ ही अपने मित्रों को भी खींच ले गया । सीकरी अकबर की ही नहीं, किन्तु तत्कालीन भारत की एक स्मृति है ।

संसार का सबसे बड़ा विजय-तोरण, वह बुलन्द दरवाजा, छाती निकाले दक्षिण की ओर देख रहा है । इसने उन मुगल योद्धाओं को तो देखा होगा जो सर्वप्रथम मुगल साम्राज्य के विस्तार के लिए दक्षिण की ओर बढ़े थे । उसने विद्रोही औरंगजेब की उमड़ती हुई सेना को घूरा होगा और पास ही पराजित

दारा के स्वरूप में अकबर के आदर्शों का पतन भी उसे देखना पड़ा होगा। अन्तिम मुगलों की सेनायें भी इसी के सामने होकर निकली होंगी। वे सेनायें जिनमें वेश्यायें, नर्तकियां और स्त्रियां भी रणक्षेत्र पर जाती थीं और रणक्षेत्र को भी विलास-भूमि में परिणित कर देती थीं। यदि आज यह दरवाजा अपने संस्मरण कहने लगे, पत्थरों का यह ढेर बोल उठे, तो भारत के न जाने कितने अज्ञात इतिहास का पता लग जावे और न जाने कितनी ऐतिहासिक त्रुटियां ठीक की जा सकें।

यह एक विजय-तोरण है; खानदेश की विजय का एक स्मारक है। किन्तु यदि देखा जाये तो यह दरवाजा अकबर द्वारा भारतीय सभ्यता पर प्राप्त की गयी विजय का ही एक महान् स्मारक है। अकबर ने अपने हृदय की विशालता को इस दरवाजे की विशालता में व्यक्त किया है।

यह संसार एक पुलिया है, इसके ऊपर से निकल जा, किन्तु इस पर घर बनाने का विचार मन में न ला। जो यहां एक घंटा-भर भी ठहरने का इरादा करेगा वह चिरकाल तक यहां ही ठहरने को उत्सुक हो जावेगा। सांसारिक जीवन तो एक घड़ी-भर का ही है; उसे ईश्वर-स्मरण तथा भगवद् भक्ति में बिता; ईश्वरोपासना के अतिरिक्त सब कुछ व्यर्थ है, सब कुछ असार है।

सांसारिक जीवन की असारता संबंधी इन पंक्तियों को एक विजय-तोरण पर देखकर कुतूहल होता है। अकबर मानव-जीवन के रहस्य को ढूंढ निकालने तथा दो पूर्णतया विभिन्न सभ्यताओं का मिश्रण करने निकला था, किन्तु वह वास्तविक वस्तु तक नहीं पहुंच पाया, मृग तृष्णा के जल की नाईं उन्हें ढूंढता ही रहा और उसे अन्त तक उनका पता न मिला। भोले-भाले बालक की तरह उसने हाथ फैलाकर अनजाने ही कुछ उठा लिया; वह सोचता था कि उसे उस रहस्य का पता लग गया, वह इष्ट वस्तु को पा गया; किन्तु जिसे वह रत्न समझे बैठा था वह था कांच का टुकड़ा। सारे जीवन-भर अकबर यही सोचता रहा कि उसे इच्छित रत्न प्राप्त हो गया और उसी ख्याल से वह आनन्दित होता था।

जीवन-भर अकबर भारतीय तथा मुस्लिम सभ्यताओं के सम्मिश्रण का स्वप्न देखता रहा। यह एक सुखद स्वप्न था। अत: जब अकबर के उस मानव-जीवन स्वप्न का अन्त हुआ तब सभ्यता की यह स्वप्निल विजय भी नष्ट हो गयी और वह सम्मिश्रण केवल एक स्वप्न वार्ता, नानी की एक कहानी मात्र बन गयी। बुलन्द दरवाजा उसी सुखद स्वप्न की एक स्मृति है; एवं इसे विजय-तोरण न कहकर "स्वप्न-स्मारक" कहना अधिक उपयुक्त होगा।

उस दरवाजे में होकर, उस स्वप्न को याद करते हुए हम एक आंगन में जा पहुंचते हैं; सामने ही दिखायी पड़ती है एक सुन्दर श्वेत कब्र। यह उस साधु की समाधि है जिसने अपने पुण्य को देकर मुगल घराने को आरम्भ में ही निर्मूल होने से बचाया था। अपनी सुन्दरता के लिए अपनी कला की दृष्टि से यह एक अनुपम अद्वितीय कृति है। समस्त उत्तरी भारत के भिन्न-भिन्न धर्मानुयायी हिन्दू-मुसलमान आदि प्रतिवर्ष इस कब्र पर खिंचे चले आते हैं, वे सोचते हैं कि जिस व्यक्ति ने जीते जी अकबर को भिक्षा दी, क्या उसी व्यक्ति की आत्मा स्वर्ग में बैठी उनकी छोटी सी इच्छा भी पूर्ण न कर सकेगी? और सामने ही वह मस्जिद, जो यद्यपि पूर्णतया मुस्लिम ढंग की है और जो अपनी सुन्दरता के लिए भी बहुत प्रख्यात नहीं है, तथापि वह एक ऐसी विशेषता के लिए विख्यात है जो किसी दूसरे स्थान को प्राप्त नहीं हुई। इसी मस्जिद ने एक भारतीय मुसलमान सम्राट को उपदेशक के स्थान पर खड़ा होकर प्रार्थना करते देखा था। भारतीय मुस्लिम साम्राज्य के इतिहास में यह एक अनोखी अद्वितीय घटना थी और वह घटना इसी मस्जिद में घटी थी।

अकबर को सूझी थी कि इस्लाम धर्म की असहिष्णुता को मिटा दे, उसकी कठोरता को भारतीय सहिष्णुता की सहायता से कम कर दे। क्यों न वह भी प्रारम्भिक ख़लीफाओ के समान स्वयं धर्माधिकारी के उच्चासन पर खड़ा होकर सच्चे मानव-धर्म का प्रचार करे, उसके साथी अबुल फजल और फैजी ने उसके आदर्श को सराहा और उस दिन जब पूरी-पूरी तैयारियां हो गयीं तब अकबर पूर्ण उत्साह के साथ उस उच्चासन पर चढ़कर प्रार्थना करने लगा....

"उस जगत-पिता ने मुझे साम्राज्य दिया। उसने मुझे बुद्धिमान, वीर और शक्तिशाली बनाया। उसने मुझे दया और धर्म का मार्ग सुझाया और उसी की कृपा से मेरे हृदय में सत्य के प्रति प्रेम का सागर हिलोरे मारने लगा। कोई भी मानवीय जिह्वा उस परमपिता के स्वरूप, गुणों आदि का पूरा-पूरा वर्णन नहीं कर सकती। अल्ला-हो-अकबर! ईश्वर महान् है।"

परन्तु—आह! अपने सम्मुख, अपने चरणों में हजारों पुरुषों को एक साथ ही उस परमपिता की उपासना में रत, नतमस्तक होते देखकर अकबर स्तब्ध हो गया। अपने उस नए पद की महत्ता का अनुभव कर अकबर अवाक् रह गया, उसका गला भर आया, आंखें डबडबा गयीं। आवेश के मारे कपड़े में अपना मुंह छिपाकर वह उस उच्चासन से उतर पड़ा। अकबर के अधूरे सन्देश को काजी ने पूरा किया। अकबर ने स्वप्न देखा था, जिसमें वह महात्मा तथा नवीन धर्मप्रचारक की तरह खड़ा उपदेश दे रहा था और उसकी समस्त प्रजा स्तब्ध खड़ी उसके सन्देश को एकाग्रचित्त से सुन रही थी। किन्तु जीवन की

वास्तविकता की टक्कर खाकर उसका वह स्वप्न भंग हो गया; उसे प्रथम बार ज्ञात हुआ कि स्वप्नलोक भौतिक संसार से दूर एक ऐसा स्थान है, जहां मनुष्य अपनी इच्छाओं तथा आकांक्षाओं के साथ स्वछंदतापूर्वक खेल सकता है, किन्तु उन इच्छाओं का भौतिक जगत में कुछ भी स्थान नहीं है।

भौतिक संसार को स्वप्न संसार में परिणत करना मृगरीचिका से पानी पीने की दुराशा करने के समान है। जो इसे साधने का प्रयत्न करता है वह इस संसार में उन्मत्त या बिगड़े दिमाग वाला पागल कहलाता है। इस भौतिक संसार में आकर वह स्वप्नलोक सांसारिक जीवन की भीषण चोटें न सहकर चूर-चूर हो जाता है और मनुष्य का वह छोटा-सा हृदय उन भग्नावशेषों पर रोता है और उसी दुःख से विदीर्ण होकर टूक-टूक हो जाता है। सम्भव है मनुष्य अपने लिए एक नया स्वप्नलोक निर्माण कर सके, किन्तु उसे नया हृदय कहां मिलेगा। जिसको प्राप्त कर वह अपने टूटे हुए हृदय को भूल सके, अपने पुराने घावों को भर दे और उसके बाद उस नये स्वप्नलोक में सुखपूर्वक विचर सके। टूटे हुए हृदय को समेटे अपने भग्न स्वप्न संसार की स्मृति का भार उठाये नवीन स्वप्न लोक में विचरना एक असम्भव बात है।

और यही है उस अकबर का दीवान खास। बाहर से तो एक साधारण दुमंजिला मकान देख पड़ता है, किन्तु सचमुच में यह भारतीय कला का एक अद्भुत नमूना है। एक ही स्तम्भ पर सारी ऊपरी मंजिल खड़ी है। उसे निर्माण करने में भारतीय कारीगरों ने बहुत कुछ बुद्धि व्यय की होगी। अकबर के समय इस मकान में क्या होता था? इस विषय पर इतिहासकारों में मतभेद है कि यहां धार्मिक वाद-विवाद होते थे या नहीं। कुछ का कथन है कि इसी महान् स्तम्भ पर बैठकर अकबर विभिन्न धर्मानुयायियों के कथन सुना करता था, और वे धर्मानुयायी नीचे चारों ओर बैठे क्रम से अपने-अपने धर्म की व्याख्या करते थे।

अकबर का मस्तिष्क विश्व-बंधुत्व तथा मानव-भ्रातृत्व के विचारों का पूर्ण आगार था। भिन्न-भिन्न धर्मों का भीषण संघर्ष देखकर उसके इन विचारों को भयंकर ठेस लगती थी, कठोर आघात पहुंचता था। कुछ ऐसे मूल तत्वों का संग्रह कर वह एक ऐसे मत को प्रारम्भ करना चाहता था, जहां किसी भी प्रकार का वैषम्य न हो, जिसमें कोई धार्मिक संकीर्णता न पायी जावे। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह भिन्न धर्मानुयायियों के कथन सुना करता था। उस महान् स्तम्भ पर स्थित अकबर अंत में एक पूर्ण सत्य को पा गया। उस महान् स्तम्भ

की ही तरह "ईश्वर एक है" इस एक सत्य पर ही अकबर के दीन-ए-इलाही का महान् भवन निर्माण किया। ज्यों-ज्यों यह स्तम्भ ऊपर चढ़ता जाता है त्यों-त्यों उसका आकार बढ़ता जाता है, और अंत में ऊपर पहुंच कर एक ऐसा स्थान आता है, जहां पर सब धर्मानुयायी समान अवस्था में भाई-भाई की तरह मिल सकें। उस महान् धर्म दीन-ए-इलाही में जा पहुंचने के लिए अकबर ने चार राहें बनायी जो हिन्दु, मुसलमान, बौद्ध और ईसाइयों को सीधा विश्व-बंधुत्व की उस विशद परिधि में ले जा सके।

यह दीवान खास एक तरह से अकबर के दीन-ए-इलाही का मूर्तिमान् स्वरूप है। बाह्य दृष्टि से यह एक साधारण वस्तु देख पड़ती है, किन्तु ध्यानपूर्वक देखा जाय तो यह अपने ढंग का निराला ही है। इसी भवन में दीन-ए-इलाही का प्रारम्भ हुआ था; और इसी भवन के समान यद्यपि संसार विश्व-बन्धुत्व की महान् भावना को आश्चर्यचकित होकर देखता है तथापि एक अव्यावहारिक आदर्श मानकर उसे प्राप्त करने का वह प्रयत्न नहीं करता। दीन-ए-इलाही के समान ही यह भवन एक परित्यक्त, उपेक्षित तथापि एक संपूर्ण आदर्श है।

सीकरी के खडहर विश्व-बंधुत्व तथा मानव-भ्रातृत्व के उस नवजात आदर्श शिशु की श्मशान-भूमि है। मध्यकालीन भारत ने उसे गला घोंटकर मार डाला और वहीं दफना दिया। अपने प्यारे बच्चे की मृत्यु पर उसकी माता, जगत-शांति, हाहाकार करती है और रात्रि के समय जब समस्त संसार शांत सो जाता है और सुदूर आकाश से जब तारागण इस दुखी लोक को ताकते हैं तथा इसकी दशा पर मूल रुदन करते हैं, तब आज भी उन खंडहरों में उस दुखिया माता का सिसकना सुनायी देता है! बेचारी जगत-शांति उसांसे भरकर रह जाती है, अपने प्यारे बच्चे की कब्र पर दो आंसू बहा देती है। परन्तु···संसार तो अपने हाल में ही मस्त चलता जाता है। कौन सहानुभूति करता है उस दुखिया माता के साथ? कौन उस निरही बच्चे की अकाल मृत्यु पर शोक की उन्मत्त लाली में, उसके लिए बलिदान किये गये पुरुषों के गरम-गरम तपतपाते खून में डूबो दिया।

दीवाने खास के पास ही वह चौकाकार चबूतरा है, जहां बादशाह अपनी सम्राज्ञियों तथा अपने प्रेमी मित्रों के साथ जीवित गोटों का चौसर खेला करते थे। प्रत्येक गोट के स्थान पर एक सुन्दर नवयुवा दासी खड़ी रहती थी, पूर्णिमा की रात को जब समस्त संसार पर शीतल चांदनी छिटकी होगी, उस समय उस स्थान पर चौसर का वह खेल कितना मादक रहा होगा। राजमद मस्ती नहीं हो सकता पर उस खेल के आनन्द का तथा उस स्थान के उस मस्ताने वातावरण

का ? अकबर के मदमाते मस्तिष्क की यह एक अनोखी सूझ थी। जहां तक पढ़ा या सुना है, संसार के इतिहास में अकबर के अतिरिक्त किसी ने भी जीवित गोटों का ऐसा चौसर नहीं खेला।

यों तो प्रत्येक शासक अपनी प्रजा के जीवन, उसकी स्वतन्त्रता तथा उसके समस्त कार्यों के साथ खिलवाड़ किया करता है। एकाध शासक ही ऐसा होगा, जिसे यह मालूम हो कि उसकी आज्ञाओं का पालन करने में शासितों पर क्या-क्या बीतती होगी। जिन शासकों ने कभी भी आज्ञापालन का अभ्यास नहीं किया, जिन्होंने अपने बाल्यकाल से ही मानव-जीवन के साथ खिलवाड़ किया, उनके लिए मानव-जीवन केवल आमोद-प्रमोद की वस्तु है। वे दूसरों के जीवन के साथ जी भरकर खेलते हैं, पर उन बेचारों को यह मालूम नहीं कि उनका खिलवाड़ शासितों के लिए कितना भयंकर होता है।

परन्तु अकबर का यह खिलवाड़ उतना ही अहिंसक था, जितनी कि स्वप्न की लड़ाई होती है। संसार के लिए तो वह एक स्वप्न ही था। कुछ ही वर्षों के लिए और तब भी इनी-गिनी बार ही संसार ने यह दृश्य देखा। वह खेल एक अतीत स्मृति हो गयी। अकबर के स्वप्न लोक का एक अनोखा दृश्य था। स्वप्न लोक के रंगमंच पर होने वाले नाटकों की एक विशिष्ट वस्तु थी। अकबर की रंगरेलियों के विस्तृत आयोजन की एक अद्वितीय मनोरंजक विशेषता थी।

और इस स्वप्नलोक में एक स्थान वह भी है, जहां अकबर अपनी सारी श्रेष्ठता, अपने सारे सयानेपन को भूलकर कुछ समय के लिए आंखमिचौनी खेलने लगता था। अकबर के वक्षःस्थल में भी एक छोटा-सा हृदय धुकधुकाता था। अपने महान् उच्चपद की महत्ता का भार निरन्तर वहन करते-करते कई बार एक शैथिल्य का अनुभव करता था। आठों पहर सम्राट रहकर, मानव-जीवन से दूर गौरव और उच्च पद के ऊसर रेगिस्तान में पड़ा-पड़ा अकबर तड़पता था, उसका हृदय उन कृत्रिम बंधनों से जकड़ा हुआ फड़फड़ाता था। इसी कारण जब उस छोटे हृदय में विद्रोहाग्नि धधक उठती थी, तब कुछ समय के लिए अपने पद की महत्ता तथा गौरव को एक ओर रखकर वह सम्राट भी बालकों के उस सुखपूर्ण भोले-भाले संसार में घुस पड़ता था, जहां मनुष्य मात्र चाहे वह राजा हो या रंक एक समान हैं और सब ही साथ खेलते हैं। बालकों के साथ खेलकर अकबर मानव-जीवन के कठोर सत्यों के साथ आंखमिचौनी खेलता था। अकबर को स्वप्नलोक में भी खेल सूझा। यों बालकों के साथ उनके उस अनोखे लोक में विचर कर अकबर वह जीवन-रस पीता था, जिसके बिना साम्राज्य के उस गुरुतम भार से दबकर वह कभी का इस संसार से विदा हो गया होता।

स्वप्न संसार का वह स्वप्नागार–वह ख्वाबगाह—एक अनोखा स्थान है। स्वप्न-लोक में रहते हुए भी अकबर की स्वप्न देखने की लत नहीं छूटी। कल्पना लोक में विचरने तथा स्वप्न देखने की लत एक बार पड़ी हुई किसकी छूटी है ? यह वह मदिरा है जिसका प्याला एक बार मुंह लगने पर कभी भी अलग नहीं होता, कभी भी खाली रहने नहीं पाता। स्वप्नलोक में पड़ा-पड़ा अकबर वास्तविक जीवन का स्वप्न देखता था। इस लोक में मस्त पड़ा था, किन्तु वह सम्राट था, वास्तविक संसार को किस प्रकार भुलाता ? भौतिक संसार के इन कार्यों में उसे निरन्तर लगे रहना पड़ता था। ऐश्वर्य और विलासिता के सागर में गर्क रहते हुए भी उसे एक विशाल साम्राज्य पर शासन करना पड़ता था। साम्राज्य पर शासन करना तथा विस्मृति-मदिरा पीकर ऐश्वर्य-सागर में गोते लगाना दो ध्रुवों की नाई विभिन्न हैं। अतएव जब अकबर की इच्छा हुई कि वह प्रेम-महोदधि में गोता लगाये, कुछ काल के लिए विस्मृतिलोक में घूमे तब तो उसने सांसारिक बातों को, साम्राज्य-संचालन के कार्य को, एक स्वप्न समझा। स्वप्नलोक के स्वप्नागार में पड़ा अकबर साम्राज्य-संचालन का स्वप्न देखा करता था। राज्य कार्य करते हुए भी सुख-भोग का मद न उतरने देने के लिए अकबर ने इस स्वप्नागार की सृष्टि की थी।

सीकरी का सीकर सूख गया, उसके साथ ही मुस्लिम साम्राज्य का विशाल वृक्ष भी भीतर ही भीतर खोखला होने लगा। करोड़ों पीड़ितों के तपतपाये आंसुओं से सींचे जाकर उस विशाल वृक्ष की जड़ें मुर्दा होकर ढीली हो गई थीं, अतः जब अराजकता, विद्रोह तथा आक्रमण की भीषण आंधियां चलने लगीं, युद्ध की चमचमाती हुई चपला चमकी, पराजय रूपी वज्रपात होने लगे तब तो यह साम्राज्यरूपी वृक्ष उखड़कर गिर पड़ा, टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर गया, और उसके अवशेष, विलास और ऐश्वर्य का वह भव्य ईंधन, असहायों के निःश्वासों तथा शहीदों की भीषण फुंकारों से जलकर भस्म हो गये। जहाँ एक सुन्दर वृक्ष खड़ा था, जो संसार में एक अनुपम वस्तु थी, वहां कुछ ही शताब्दियों में रह गये, गम्भीर गह्वर, उस वृक्ष के कुछ अधजले झुलसे हुए यत्र-तत्र बिखरे टुकड़े तथा उस विशाल वृक्ष की वह मुट्ठी भर भस्म। सीकरी के खंडहर उसी भस्म को रमाये खड़े हैं।

सब कुछ सपना ही तो था···देखते ही देखते विलीन हो गया। दो आंखों की यह सारी करामात थी। प्रथम तो एकाएक झोंका आया, अकबर मानो सोते से जग पड़ा, स्वप्नलोक को छोड़कर भौतिक संसार में लौट आया। स्वप्न भंग हो गया और साथ ही स्वप्नलोक को छोड़कर भी उजड़ गया···और तब रह गई

उनकी एकमात्र शेष स्मृति। किन्तु दो आंखें—अकबर की ही आंखें—ऐसी थी जिन्होंने यह सारा स्वप्न देखा था, जिनके सामने ही इस स्वप्न का सारा नाटक कुछ काम के लिए ही क्यों न हो—एक सुंदर मनोहारी नाटक खेला गया था, जिसमें अकबर स्वयं एक पात्र था, उस स्वप्नलोक के रंगमंच पर पूरी शान और अदा के साथ अपना पार्ट खेलता था। उन दो आंखों के फिरते ही, उनके बंद होने के बाद उस स्वप्न की रही-सही स्मृतियां भी लुप्त हो गयी। जो एक समय सच्ची घटना थी, जो बाद में स्वप्न मात्र रह गया था, आज उसका कुछ भी शेष न रहा। अगर कुछ बाकी बचा है तो केवल वह सुनसान भग्न रंगमंच जहां यह दिव्य स्वप्न आया था, जहां जीवन का यह अद्भुत रूपक खेला गया था, जहां कुछ के लिए समस्त संसार को भूलकर अकबर ऐश्वर्य सागर में गोते लगाने के लिए कूद पड़ा था, जहां अकबर के मदमाते यौवन की अक्षय कामनाओं और उद्दीप्त वासनाओं ने नग्न नृत्य किया था, और गौरव को ताक में रखकर जो एक साधारण मानव बन जाता था, रंगरेलियां करता था, बालक की तरह उछलता था, जीवन के साथ आंखमिचौनी खेलता था और अमरत्व के सपने देखता था। सीकरी ही वह स्थान है, जिसे देखकर मालूम होता है कि मनुष्य कितना ही महान् और बड़ा क्यों न हो जावे, उसकी भी छाती में एक छोटा सा-कोमल भावुक हृदय धुकधुकाता है, उस दिल में भी अनेक बार वासनाओं तथा आकांक्षाओं के भीषण संग्राम होते हैं, : ऐसे पुरुष को भी मानवी दुख-दर्द, सांसारिक कामनाएं तथा भौतिक वासनाएं सताती हैं।

स्वप्न ही तो था। बढ़ते हुए वैभव के साथ कमल की नाई यह नगरी बढ़ी थी। किन्तु लुप्त हो गया उसका वह वैभव, अकबर लौट गया भूतों की ओर परन्तु आज भी उन सूखे पंकजों के अवशेष कीचड़ में धंसे हुए वहीं पड़े हैं। पंकपूर्ण पृथ्वी का हृदय भी पंकजों के इस पतन को देखकर मग्न हो गया, आंसुओं का प्रवाह उमड़ पड़ा, परन्तु वे आंसू भी शीघ्र ही सूख गये; उस जीवनपूर्ण सर की सतह सूखकर खण्ड-खण्ड हो गयी है।

वैभव से विहीन सीकरी के वे सुन्दर आश्चर्यजनक खण्डहर मनुष्य की विलास-वासना और वैभव लिप्सा को देखकर आज भी वीभत्स अट्टहास करते हैं। अपनी दशा को देखकर सुध आती है उन्हें उन करोड़ों मनुष्यों की, जिनका हृदय, जिनकी भावनाएं, शासकों, धनिकों तथा विलासियों की कामनाएं पूर्ण करने के लिए निर्दयता के साथ कुचली गयी थी, आज भी उन भव्य खण्डहरों में उन पीड़ितों का रुदन सुनायी देता है। अपने गौरवपूर्ण भूतकाल को याद कर वे निर्जीव पत्थर भी रो पड़ते हैं। अपने उस बाल-वैधव्य को स्मरण कर वह परित्यक्ता नगरी उसांसे भरती है। विलास-वासना, अतृप्त कामना तथा

राजमद के विष की बुझाई हुई ये उसांसे इतनी विषैली हैं कि उनको सहन करना कठिन है। इन्हीं आंहों की गरमी तथा विष से मुगल साम्राज्य भस्मीभूत हो गया। अपनी दुर्दशा पर ढलके हुए आसुओं के उस तप्त प्रवाह में रहे-सहे भस्मावशेष भी बह गये।

एक नजर तो देख इस मृत शरीर को, अकबर के उस मग्न स्वप्न संसार के उस सुनसान रंगमंच को, अकबर के स्वप्नलोक के उन टूटे-फूटे अवशेषों को। अकबर के ऐश्वर्य-विलास के इस लोक को उजड़े शताब्दियां बीत गयी, किन्तु उसकी ऐश्वर्य-इच्छा, विलास-वासना, वैभवलिप्सा एवं कामना-कुंज का वह मकबरा आज भी खड़ा है। सीकरी के वे भव्य खंडहर मानवी इच्छाओं, मनुष्य की सुख-वासनाओं का वह करुण दृश्य देखकर आज वे पाषाण भी क्षुब्ध हो जाते हैं। अपने असमय पतन पर टूटे हुए दिलों की आंहें आज भी उन मग्न प्रासादों से सन-सन करती हुई निकलती हैं।

अकबर ने स्वप्नलोक निर्माण किया था, किन्तु भौतिक जीवन के कठोर थपेड़े खाकर वह भंग हो गया। अपनी कृति की दुर्दशा, तथा अपनी आशाओं और कामनाओं को निष्ठुर संसार द्वारा कुचले जाते देखकर अकबर रो पड़ा। उसका सजीव कोमल हृदय फटकर टुकड़े-टुकड़े हो गया। वे टुकड़े सारे मग्न स्वप्नलोक में बिखर गये, निर्जीव होकर पथरा गये। सीकरी के लाल-लाल खंडहर अकबर के उस विशाल हृदय के रक्त से सने हुए टुकड़े हैं। टुकड़े-टुकड़े होकर अकबर का हृदय निर्जीव हो गया, निरन्तर संसार की मार खाकर वह भी पत्थर की तरह कठोर हो गया। जिस हृदय ने अपना यौवन देखा, अपने वैभवपूर्ण दिन देखे, जो ऐश्वर्य में लोटता था, स्नेह-सागर में जो डुबकियां लगाता था, राज्यश्री की गोद में जिसने वर्षों विश्राम किया, मद से उन्मत्त जो बरसों स्वप्न संसार के उस सुन्दर लोक में विचरा, वही भग्न, जीर्ण-शीर्ण, पथराया हुआ, शताब्दियों से खड़ा सर्दी, गर्मी, पानी और पत्थर की मार खाकर भी चुप है।

शताब्दियां बीत गयी और आज भी सीकरी के वे सुन्दर रंगीले खंडहर खड़े हैं। उस नवजात शिशु नगरी ने केवल पन्द्रह वर्ष ही श्रृंगार किया, और फिर उसके प्रेमी ने उसे त्याग दिया, उसने उसे ऐसा भुला दिया कि कभी भूल से भी लौटकर मुंह नहीं दिखाया। ऐश्वर्य और विलास में जिसका जन्म हुआ था, अनन्त-यौवना राज्यश्री ने जिसे पाला-पोसा था, एक मदमाते युवा सम्राट ने जिसका श्रृंगार कराने में अपना सर्वस्व लुटा दिया था और जिसकी अनुपम सुन्दरता पर एक महान् साम्राज्य नाज करता था, उससे अपने प्रेमी द्वारा ऐसा तिरस्कार घोर अपमान—नहीं सहा गया। अकबर के समय में ही उसने वैभव को त्यागकर विधवा वेश पहिन लिया था। बिछुये फेंककर उसने बिछुआ हृदय से

लगाया। और अकबर की मृत्यु होते ही वो सब कुछ लुट गया, हृदय विदीर्ण हो गया, शोक के मारे कलेजा फट गया, अंग क्षत-विक्षत हो गये, आंखें पथरा गयी और आत्मा अनन्त में विलीन हो गयी। भारत विजेता, मुगल साम्राज्य के निर्माता, महान् अकबर की प्यारी नगरी का वह निर्जीव शरीर शताब्दियों से पड़ा धूल धूसरित हो रहा है।

सर-सर करती हुई हवा एक छोर से दूसरे छोर तक निकल जाती है और आज भी उस निर्जीव सुनसान नगरी में फुसफुसाहट की आवाज में डरता हुआ कोई पूछता है— "क्या अब भी मेरे पास आने को वह उत्सुक है ?" बरसों शताब्दियों से वह उसकी बाट देख रही है, और आज—रह गया है उसका वह अस्थिपंजर। उस छिटकी हुई चांदनी में तारागण टिमटिमाते हुए मुस्करा-कर उसकी ओर इंगित करते हैं—"क्या सुन्दरता की दौड़ इस अस्थिपंजर तक ही है ? और प्रति वर्ष जब मेघ दल उन खंडहरों पर होकर गुजरता है तब वह पूछ बैठता है— "क्या कोई संदेशा भिजवाना है ?" और तब उन खंडहरों में गहरी निःश्वास सुन पड़ती है और उत्तर मिलता है— "अब किस दिल से उसका स्वागत करूं ?" परन्तु दूसरे ही क्षण उत्सुकता-भरी कांपती हुई आवाज में एक प्रश्न भी होता है— "क्या अब भी उसे मेरी सुध है ?"

परन्तु—विस्मृति का वह काला पट ! दर्शक के प्रश्न के उत्तर में गाइड अपनी टूटी फूटी अंग्रेजी में कहता है— "इस नगरी को हिन्दुस्तान के बादशाह शहंशाह अकबर ने कोई साढ़े तीन सौ वर्ष पहले बनवाया था।"

बीस हजार राष्ट्रकवि

अज्ञेय

निर्धन, किन्तु सुनहली धूप और सुनहले खेतों से सम्पन्न सुन्दर प्रदेश। पहाड़ियों से लहराते हुए सागर-तट तथा क्रमशः उतरती तलहटियां, जिनके पके गेहूं के कुन्दन में जहां-तहां अप्रत्याशित ढंग से पोस्ते के फूल के लाल नगीने जड़े हैं। अंग्रेजी से भिन्न लय और स्वर योजना वाली संगीतमयी बोली, जिसकी विशेष प्रकार की मीड़ें उसके बोलने वालों की अंग्रेजी में भी उतर आती हैं। मिलनसार परंतु क्रोधी, गम्भीर पर सहानुभूति-सम्पन्न, फटेहाल पर उदार अभिमानी किन्तु पर-दुख-कातर लोग।

कोई भारतीय अपने मन में इंगलैंड का और अंग्रेज का जो भी चित्र लेकर आया हो, वेल्स की सीमा में प्रवेश करते ही वह बदलने लगता है, और कुल मिलाकर वह परिवर्तन प्रीतिकर ही होता है। लम्बी अवधि तक रह लेने के बाद तो यह भी जान पड़ने लगता है कि जिस जाति-समूह को हम अज्ञान अथवा सुविधा-वश अंग्रेज जाति कहते हैं उसमें सम्मिलित दूसरी सभी जातियां वास्तविक अंग्रेज जाति से अधिक आकर्षक है। तब अंग्रेज की प्रभुता पर आश्चर्य भी होने लगता है और धीरे-धीरे सतह के नीचे के वे दुराव खिचाव भी समझ में आने लगते हैं जो समय-समय पर फूट कर बाहर निकल पड़ते हैं। अंग्रेज और आयरिश का विरोध तो आयरी स्वातन्त्र्य आन्दोलन ने हमारे सामने ला रखा, बल्कि आयरी विद्रोह भावना से एक समय के भारतीय क्रान्तिकारी को बड़ी प्रेरणा भी मिलती रही। लेकिन इस राजनैतिक द्वन्द्व के पीछे धार्मिक परम्पराओं का (एंग्लिकन और कैथोलिक सम्प्रदायों का) जो द्वन्द्व था, और उससे भी बढ़ कर जातिगत संवेदना और आदर्शों का जो भेद था, वह यहां भारत में रहते हुए उतना स्पष्ट नहीं होता। मुझे याद है, जिन दिनों मैं सेना में था, उन दिनों अपने साथी एक ब्रिटिश अफसर को अंग्रेजों की बुराई करने पर कि ("द इंग्लिश आर वेरी मीन") अंग्रेज बहुत कमीने होते हैं—मैंने जब अचकचा कर कहा था कि आप भी तो अंग्रेज हैं, तो उसने तिलमिला कर उत्तर दिया था, "नहीं, मैं

वेल्श हूं। अंग्रेज और आयरिश के विरोध के बावजूद ब्रिटिश सेना में आयरिश सैनिकों की बहुसंख्या थी तो मैं आयरिश स्वभाव के अन्तर्विरोध का एक चिन्ह मानकर स्वीकार कर चुका था, लेकिन इंग्लिश और वेल्श का यह विरोध मेरे लिए नयी बात थी। इसकी वास्तविक शक्ति यूरोप और इंगलैण्ड की यात्रा के बाद ही ठीक-ठीक समझ सका। इंग्लिश और वेल्श, आयरिश और स्काट, ऐंग्लोसेक्सन और कैल्टिक अथवा गेलिक, इनके जातिगत संस्कार कितने गहरे और कितने भिन्न हैं इसका अनुमान भी उन लोगों के लिये कठिन है जो कि सारे यूरोप को ही नहीं, सारे पश्चिम को एक मान लेते हैं। यों यह अधिक विस्मय की बात तो नहीं है, क्यों कि यूरोप के लोग भी सारे पूर्व अथवा "ओरिएंट" को एक मान लेते हैं और अनुभव के बाद ही अलग-अलग देशों की अलग-अलग प्रवृत्तियां पहचान पाते हैं। फिर इससे आगे बढ़कर "पहाड़ी" और "देसवाले" या पंजाबी और बंगाली, या हिन्दुस्तानी और द्रविड़, या द्राविड़ के अन्तर्गत तमिल और मलयाली के स्वभाव, संवेदना, रागात्मक प्रवृत्ति और जीवन-दृष्टि के अन्तर को पहचानना तो दूर की बात है।

इंगलैण्ड में भी, और भी अधिक रहने से अंग्रेज की प्रभुता पर आश्चर्य नहीं रहता, क्योंकि धीरे-धीरे उसके कारण भी समझ में आने लगते हैं। अंग्रेज के अपने गुण हैं, जो उसे आकर्षक भले ही न बनावें, समर्थ अवश्य बनाते हैं। किन्तु जाति तत्व के विवेचन में मुझे नहीं पड़ना है। एक बार वेल्स की सीमा में प्रविष्ट हो जाने पर अपने को उस प्रदेश के सौन्दर्य के प्रति समर्पित कर देना ही श्रेयस्कर है। फिर जल्दी भी है—आगे बढ़कर हमें वेल्श के बीस हजार राष्ट्र-कवियों के दर्शन भी तो करने हैं।

हम वेल्श प्रदेश पार करते हुए उत्तरी वेल्श की एक मुख्य बस्ती पुल्ललेली की ओर जा रहे हैं, जहां पर इस वर्ष का राष्ट्रीय-उत्सव "आइस्तेद्व" हो रहा है।

वेल्श में बड़े शहर नहीं हैं, शहर ही अभी हाल तक नहीं थे, ग्राम अथवा लोक सभ्यता का वह उत्तम उदाहरण था। अब कोयले की खानों के कारण कुछ शहर बन गये हैं, और गर्मियों में सागर-स्नान के अभिलाषी सैलानियों के वार्षिक आक्रमण के कारण तटवर्ती कस्बे तो बहुत से हो गये हैं, फिर भी वेल्श की परम्पराएं सब ग्राम-जीवन की परम्पराएं हैं और उसके सामाजिक जीवन में वैसी ही सुगठित एकता है। औद्योगिक क्रान्ति के प्रवर्तक ब्रिटेन में इतना ही वेल्श को विशिष्ट स्थान देता, पर उसकी विशिष्ट सांस्कृतिक परम्पराएं तो उसे और भी उल्लेख्य बना देती हैं। सारे यूरोप में कदाचित यही प्रदेश ऐसा है जहां काव्य-गायन की परम्पराएं अक्षुण्ण बनी है, जहां किसान-कमकर स्वयं वर्ण वृत्तों में कविता करते और वाद्यों के साथ गाकर सुनाते हैं, जहां गांव-गांव और

जिले-जिले का अपना काव्योत्सव और काव्य-प्रतियोगिता होती है, और राष्ट्रीय काव्योत्सव में सैंकड़ों प्रतियोगी भाग लेते हैं और हजारों व्यक्ति सप्ताह भर तक कविता, गान, वादन आदि सुनते हैं और प्रतियोगिता के निर्णय में दिलचस्पी रखते हैं। कहते हैं कि संस्कृति की एक पहचान यह है कि लोग अपने फुरसत के समय का क्या उपयोग करते हैं, दूसरी यह कि उनके सामूहिक मनोरंजन क्या रूप लेते हैं, इन दोनों कसौटियों पर वेल्श की संस्कृति बहुत ऊंचा स्थान पाती है, और एक बार फिर हमें वह बात माननी पड़ती है जिसका एक उदाहरण हमारा अपना देश भी है—कि साक्षरता ही संस्कृति नहीं है, कि नगर में बस कर हर शनिवार को रेस खेलने वाले या रविवार को सवेरे के शो में सिनेमा देखने वाले अनिवार्यतया उस ग्रामवासी निरक्षर से अधिक संस्कृत नहीं है जो आल्हा और चौपाई गाता है, बिरहे के दंगल में जाता है, या भांडों द्वारा की गयी समकालीन सामाजिक और राजनैतिक प्रवृत्तियों की व्यंग्य आलोचना में रस लेता है। भौगोलिक विस्तार की असमानता बाधक न हो, तो भारत और वेल्श की कई स्तरों पर तुलना हो सकती है।

पुथलेली में मैं एक वेल्श परिवार के साथ ठहरा। गृह-स्वामी कृषि-विभाग के अधिकारी थे और निरन्तर दौरे पर रहते थे, पहाड़ के ऊपर अपने छोटे-से बंगले में दूसरे-तीसरे दिन शाम को आते और बड़े सवेरे ही फिर निकल जाते। घर में गृह-स्वामिनी, दस वर्ष का लड़का मार्टिन और उनका कुत्ता ही रहते थे। बंगले की छोटी-सी बगीची से नीचे ही सागर-तट की रेती और उसके पास ही सैलानियों की नयी बस्ती से लगा हुआ आइस्तेद्ध का पण्डाल दीख पड़ता था। इस काव्योत्सव में जाने के लिए तो मैं आया ही था, लेकिन पण्डाल में जाने से पहले घर ही पर जो हुआ वह भी उल्लेखनीय जान पड़ता है। जिस बंगले में मैं ठहरा था उसके सामने ही एक अवकाश प्राप्त प्रोफेसर रहते थे जो भारत में भी रह चुके थे—एक कालेज में इतिहास के अध्यापक के रूप में—उनसे भेंट कर आया, फिर दाहिनी ओर के बंगले के पड़ोसियों से भेंट हुई। इनकी कन्याएं मार्टिन की सहेलियां थीं और गाती थीं। उनसे कुछ वेल्श लोक-गीत और एक प्रार्थना-गीत सुनकर मैंने उनकी माता की अनुमति से उन गीतों का रेकार्ड भर लिया और लड़कियों का कौतूहल शांत करने के लिए उन्हें सुना भी दिया। यह होते न होते एक अत्यन्त वृद्ध सज्जन वहां पहुंच गये और उन्होंने भी रिकार्ड सुनने की इच्छा प्रकट की। परिचय हुआ, ज्ञात हुआ कि यह उन बालिकाओं के दादा हैं। रिकार्ड सुनकर उन्होंने पूछा कि क्या मैं कोई कविता भी रिकार्ड करना चाहूंगा। मैंने कहा, सम्भव हुआ तो अवश्य। उन्होंने सहज भाव से कहा, "मेरी कविता रिकार्ड कर लीजिए।"

मैं न उन सज्जन के बारे में कुछ जानता था, न वेल्श भाषा की कविता समझ सकता था। पर शिष्टाचार–वश जब मैं उनकी कविता रिकार्ड कर चुका, तब उन्होंने उसका अर्थ भी मुझे समझाया और फिर आग्रहपूर्वक एक पुराना लोक-गीत भी रिकार्ड करा दिया। लोक-गीत की धुन अच्छी थी, पर उसकी ऊंची तान के लायक बल उनकी बूढ़ी आवाज में नहीं था। बल्कि गाने के अभ्यास से जब उनका चेहरा तमतमा कर टमाटर-सा लाल हो आया, और स्वर भी लड़खड़ा गया, तो मुझे चिन्ता भी हुई, उनका उत्साह ही मेरी जबान न बन्द किये रहता तो मैं उन्हें रोक देता। गाना पूरा करके दो-चार मिनट सांस लेकर जब वह चले गये, तब गृह-स्वामिनी ने बताया कि तीस वर्ष पहले के राष्ट्रीय काव्योत्सव में उन्हीं को राष्ट्रकवि का आसन दिया गया था। दस ग्यारह वर्ष की बालिकाओं से लेकर पच्चासी वर्ष के वृद्ध तक में अपनी भाषा के काव्य के प्रति समान उत्साह मेरे लिए स्फूर्तिप्रद अनुभव था, पर अगले पांच छह दिनों में इस उत्साह की व्यापकता के और भी प्रमाण मिले और स्फूर्ति का स्थान एक आश्चर्य-मिश्रित श्रद्धा ने ले लिया।

आइस्तेद्व का कार्यक्रम छह दिन का होता है, प्रतिदिन सवेरे नौ बजे से सायं-काल साढ़े आठ तक—बीच में दो घंटे का अन्तराल छोड़कर। इस अधिकृत कार्यक्रम के अलावा रात को तीन घंटे और कविता-पाठ, काव्य-गान आदि करना चाहें उनका कार्यक्रम। इस प्रकार कुछ लगभग पचहत्तर घंटे लगातार काव्य और गायन सुनने वेल्श-भर के लोग एकत्र होते हैं। पुथलेली के उत्सव में श्रोताओं की संख्या मुख्य बैठकों में बीस हजार थी। ध्यान रहे कि समूचे विदेश की कुल जनसंख्या बीस लाख है। अर्थात वेल्श-भाषी जनता का एक प्रतिशत इस उत्सव में आया था। यदि यह ध्यान में रखें कि इस राष्ट्रीय उत्सव की तैयारी में अनेक प्रादेशिक और स्थानिक प्रतियोगिताएं और उत्सव होते हैं, तब जाकर इसमें भाग लेने वालों का निर्वाचन हो पाता है, तो समझ में आ जायेगा कि इस का वेल्श के जीवन में क्या स्थान है, प्रत्येक सौ में अधिक से अधिक दस ऐसे होते होंगे जिन्होंने किसी न किसी सोपान पर आइस्तेद्व का काव्य-पाठ न सुना हो। वेल्श जाति को राष्ट्र कहां तक कहा जा सकता है यह विचार का विषय हो सकता है, पर यह उत्सव सच्चे अर्थ में जातीय उत्सव है इसमें कोई सन्देह नहीं, और इस दृष्टि से यह एक अद्वितीय अनुष्ठान है। और (अपने देश के सन्दर्भ को स्मरण रखते हुए) कदाचित यह भी कहना चाहिए कि इस उत्सव को कोई सरकारी सहयोग या संरक्षण या प्रोत्साहन नहीं मिलता। न उसका सरकारी प्रचार-संस्थाओं द्वारा विज्ञापन होता है, और न उसी के द्वारा सरकार का अनुमोदन या अभ्यर्थन होता है। स्थानीय शासनाधिकारी (अधीश) उसकी स्वागत

समिति का अध्यक्ष नहीं होता, न मंत्री उसका उद्घाटन करता है, न दोनों में से किसी की पत्नी पुरस्कार-वितरण करती है, उत्सव वास्तव में वेल्श जाति का उत्सव है। और उसकी प्रातिनिधिकता में प्रवासी वेल्श लोगों का कितना योग रहता है, यह उसके अन्तर्गत "वेल्श प्रवासियों के अभिनन्दन" के समारोह से प्रत्यक्ष हो जाता है। एक-एक विदेश के वेल्श प्रवासियों को जुलूस में मंच पर लाया जाता है और स्वागत के उपरान्त विशिष्ट स्थान पर बिठा दिया जाता है।

आइस्तेद्व में कई भिन्न-भिन्न प्रतियोगिताएं सम्मिलित हैं। दो काव्य-रचना की—अर्थात् एक प्राचीन रीति की कविता और एक मुक्त, यद्यपि वेल्श में मुक्त का अर्थ है वह कविता जिसमें केवल छन्द और तुक का बन्धन है, प्राचीन पद्धति में तो इनके अतिरिक्त और कई प्रकार के नियमों का निर्वाह होता है। एक प्रतियोगिता गद्य की, एक काव्य-गायन की, दो-तीन समवेत-गान की, जिसमें पुरुष-वृन्द और स्त्री-वृन्द अलग-अलग गाते हैं, फिर विशिष्ट वेल्श वाद्यों के वादन की, संगीत-निर्देशन की, नाटक-रचना और अभिनय की इत्यादि। इधर उत्सव ने जो अधिक व्यापक रूप ले लिया है, उसमें इन सांस्कृतिक कार्यों के आस-पास और भी कई प्रतियोगिताओं का वृत्त बन गया है जिनमें विद्यार्थी समुदाय भाग लेता है।

उत्सव का सबसे महत्वपूर्ण अंग होता है। विजेता कवियों का अभिषेक, प्राचीन पद्धति के कवि को आसन दिया जाता है और नयी अथवा "मुक्त" शैली के कवि को मुकुट। निर्णायक समिति पिछले पुरस्कार-विजेताओं और सम्मानित कवि-समुदाय में से चुनी जाती है : समिति का प्रमुख निर्णय सुनाता है जिसमें कविता की विशद समीक्षा भी रहती है। जिस स्तब्ध एकाग्रता के साथ पुथलेली में बीस हजार व्यक्ति इस समीक्षा को सुन रहे थे, और निर्णायकों के निर्णय पर टीका-टिप्पणी की, वह मेरे लिए अपूर्व अनुभव था और कभी कहीं साहित्य विवेचन में वर्ग-निर्विशिष्ट जन का ऐसा एकोन्मुख लगाव मैंने नहीं देखा। वर्ग-निर्विशिष्ट मैं जान-बूझ कर कह रहा हूं, क्योंकि उस जमावत में खेतिहर किसान से लेकर विश्वविद्यालय के आचार्यों और कोयला-खदान के कमकर से लेकर उच्च सरकारी अधिकारी तक सभी तरह के और स्कूल के छात्र-छात्रा से लेकर चौथे पर को आधार पार कर चुकने वाले सभी उम्र के लोग थे।

आइस्तेद्व के इस रूप का ऐतिहासिक विकास बड़ा रोचक है। यह नहीं है कि उसमें शासन या अधिकारी वर्ग का हस्तक्षेप कभी न रहा हो। बल्कि एक समय तो इसने लगभग सरकारी परीक्षा का ही रूप ले लिया था, गा-बजाकर

जीवन-वृत्ति पाने का यत्न करने वालों में पात्रों को छांट करके उन्हें लाइसेंस देना ही इसका उद्देश्य हो चला था। यही गति रहती तो कवि एक प्रकार का सम्मानित, लाइसेंसधारी मंगता ही रह जाता—"सम्मानित" इस अर्थ में कि वह बड़े आदमियों से बड़ी रकम की मांग करने का प्रमाणयुक्त अधिकारी होता।

आइस्तेद्वद का ज्ञात इतिहास हजार वर्ष से अधिक लम्बा है, प्रमुख कवि को कुर्सी देने की प्रथा तब से चली आती है। यथापि तब "कुर्सी देने" का अर्थ था दरबार में एक विशिष्ट आसन देना, और अब कवि विशिष्ट कुर्सी को अपने साथ घर ले जाता है, और बीच में कुर्सी केवल एक चांदी का छोटा सा प्रतीक होती थी जिसे वह घर ले आता और मुकुट भी ऐसा ही प्रतीक मुकुट होता था। बारहवीं शती में पहले-पहले शासक की ओर से एक वर्ष की पूर्व घोषणा के बाद काव्य प्रतियोगिता का प्रमाण मिलता है—और यह पूर्व घोषणा अब अनिवार्य है। "आइस्तेद्वद" नाम का प्रथम उत्सव पन्द्रहवीं शती में हुआ, यह भी स्थानिक शासक द्वारा आयोजित था और इसमें प्रमुख कवि, प्रमुख वादक तथा प्रमुख गायक को अलग-अलग पुरस्कार दिये गये। काव्य-छन्दों के विषय में नये नियम भी इस समय बनाये गये। सोलहवीं शती में दो मुख्य आइस्तेद्वद्वों का ऐतिहासिक उल्लेख है। इनमें विजयी कवि को एक प्रतीक-रूप कुर्सी, हार्प नामक तार-वाद्य के वादक को चांदी का छोटा सा हार्प, "क्रूथ" नामक गज से बजाये जाने वाले तार वाद्य के वादक को वैसा ही चांदी का क्रूथ, और सर्वश्रेष्ठ गायक को एक चांदी की जिह्वा भेंट की गयी थी। यह चांदी का हार्प अभी तक सुरक्षित है।

सरकारी हस्तक्षेप का प्रमाण इनमें से दूसरे आइस्तेद्वद को राज्यादेश दिया कि गायक अथवा कवि-यशः प्रार्थी सभी व्यक्तियों की परीक्षा लेकर उन्हें लाइसेंस दें, और अनाधिकारी व्यक्तियों का जहां-तहां जाना बन्द कर दें। इस प्रकार के लाइसेंस का कोई नमूना कहीं नहीं मिला है, पर इससे कुछ पहले दिया गया एक लाइसेंस अभी सुरक्षित है जिससे पता चलता है कि उस पाने वाले को "कवि कर्म की परीक्षा में उत्तीर्ण" और अभिजात समाज तथा जनसाधारण से पुरस्कार चाहने और पाने का अधिकारी प्रमाणित किया गया था। इस प्रमाण-पत्र पर दो अभिजात व्यक्तियों के और एक कवि के हस्ताक्षर हैं।

अठारहवीं शती के ऐसे समारोहों का उल्लेख तत्कालीन पंचांगों में मिलता है। वहीं से यह भी पता चलता है कि इनमें पठित काव्य का स्तर सर्वदा बहुत ऊंचा नहीं होता था। एक में तो यहां तक लिखा है कि "पिछले वर्ष हमने जिस कवि सम्मेलन की सूचना दी थी उसमें केवल एक योग्य कवि आया था, ऐसी कोई

कविता नहीं पढ़ी गयी जो तृप्तिकर या गम्भीर या मनोरंजक भी हो। फिर भी जिज्ञासु वेल्श लोगों की सूचना के लिए जो भी कबरा काव्य वहां पढ़ा गया उसके नमूने हम यहां दे रहे हैं।

एक जातीय अनुष्ठान का गौरव आइस्तेद्व को उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध से ही मिला, जब से उसका संचालन करने वाली एक स्वतन्त्र "राष्ट्रीय समिति" बनी। इस राष्ट्रीय समिति की समवर्ती उल्लेख संस्था है "गोर्सेद अथवा कवि-परिषद।" परिषद द्वारा घोषणा के बिना कोई राष्ट्रीय समारोह नहीं हो सकता और प्रतिवर्ष यह परिषद आगामी वर्ष के उत्सव के स्थान और नियमों की घोषणा करती है। इस कवि-सम्प्रदाय की सविस्तार चर्चा यहां नहीं हो सकती, पर यहां स्वस्ति-वचन के रूप में इसके मंगलाचरण का ही अनुवाद दिया जा सकता है।

प्रभु हमें अपना संरक्षण दे,
और संरक्षण में शक्ति,
और शक्ति में सहानुभूति,
और सहानुभूति में विवेक,
और विवेक में सत् का विवेक,
और सत् के विवेक में सत् का प्रेम,
और सत् के प्रेम में समूचे जीवन का प्रेम,
और जीवन में प्रभु का प्रेम—
प्रभु का और शिवता का।

कविता के प्रति वेल्श-जन का यह लगाव इतना आश्चर्यजनक इसलिए है कि साधारण समकालीन प्रवृत्ति से वह इतना भिन्न है। काव्य-प्रेम और संगीत-प्रेम वेल्श अथवा कैल्टिक जाति की स्वभावगत विशेषता है। उनकी भाषा की नाद-मयता भी इसके सर्वथा अनुकूल है। भारत में ब्रज-भाषा के माधुर्य के बारे में जैसी किंवदन्तियां प्रचलित हैं, कुछ वैसी ही बात वेल्श भाषा की सहज संगीत-मयता के बारे में कही जा सकती है और संगीत भाषा का यह संस्कार वेल्श भाषा का इतना गहरा अंग है कि उसकी गहरी छाप वेल्श लोगों द्वारा बोली और लिखी गयी अंग्रेजी पर भी पड़ती है। पिछली शती में जेराल्ड मेनली होपकिन्स की कविता का जो प्रभाव अंग्रेजी काव्य-रचना और छन्द पर पड़ा, उसका श्रेय वास्तव में वेल्श भाषा को ही मिलना चाहिए—हापकिन्स का वेल्श संस्कार ही उसकी अंग्रेजी भाषा में प्रकट हुआ और उसी ने हापकिंस को छन्द सम्बन्धी एक नयी दृष्टि दी। हमारी पीढ़ी के डायलन टामस का प्रभाव भी उतना ही स्थायी होगा या नहीं, अभी यह कहना भवितव्य-दर्शिता का दावा

करना होगा, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह प्रभाव गहरा और व्यापक हुआ है। अपने समकालीन दूसरे कवियों से टामस की कविता सुनने में कितनी भिन्न है, यह अनुभव से ही जाना जा सकता है, नहीं तो इसका अनुमान भी कठिन है कि एक ही भाषा के प्रकार, सुनने में एक-दूसरे से इतने भिन्न हो सकते हैं।

किन्तु वेल्श की यह काव्य चेतना वास्तव में एक व्यापकतर चेतना का अंग है। उसे राष्ट्रीय कहा जा सकता, यदि एक ओर यह प्रश्न न उठता कि क्या वेल्श को राष्ट्र कहना संगत है और दूसरी ओर यह भी कठिनाई न होती कि राष्ट्र कहने से एक राजनैतिक इकाई ही सामने आती है जबकि हम एक सांस्कृतिक इकाई की बात सोच रहे हैं—इतना ही नहीं, एक ऐसी सांस्कृतिक इकाई की, जिसकी मूल शक्ति उसके नागर रूप में नहीं बल्कि उसके लोक-रूप में वास करती है और जो इस बात को जानती भी है वेल्श के विभिन्न खण्डों में लोक संस्कृति की परम्पराओं की रक्षा के जो प्रयत्न हुए हैं—निःसन्देह सरकारी सहायता से—वे उल्लेखनीय हैं। कार्डिफ का लोक-संस्कृति संग्रहालय अपने ढंग का एक ही है। स्कैंडिनेविया के युवा देश भी जिनकी सांस्कृतिक परम्पराएँ उतनी लम्बी नहीं हैं और जिनकी नागर सभ्यताएं बड़ी तेजी से लोक संस्कृति को अपने में मिलाये ले रही है, लोक-जीवन को यथासम्भव संरक्षण देने का प्रयत्न करती है और उनके लोक-संग्रहालय भी दर्शनीय होते हैं, लेकिन कार्डिफ का संग्रहालय और संग्रहोद्यान विशेष उल्लेख्य हैं। हम लोग पांच-छह हजार वर्ष पहले की संस्कृति की चर्चा करते हैं और उपन्यासों में तत्कालीन जीवन का कल्पित वर्णन करते हैं, और निःसन्देह इतनी लम्बी सांस्कृतिक परम्परा गौरव का विषय है। लेकिन दो-तीन सौ वर्ष पहले का किसान ठीक किस ढंग के झोपड़े में किस ढंग से रहता था, आज के शहरी भारतवासी का इसका चाक्षष उदाहरण पाने में कठिनाई हो सकती है— इसके बावजूद कि हमारे देहातों में परिवर्तन बहुत कम और धीमी गति से हुआ है। और विभिन्न कालों के स्थापत्य शिल्प में क्या परिवर्तन होते रहे, इसकी तरफ तो मानो हमारा ध्यान ही नहीं गया है—मन्दिरों, महलों और दुर्गों की बात मैं नहीं कह रहा हूं, सिर्फ मध्य-वित्त या अल्प-वित्त गृहस्थ के घर की बात कह रहा हूं। कार्डिफ के संग्रहालय के उद्यान में अलग-अलग शतियों के खेती-घर देखकर बड़ा सन्तोष हुआ। ये खेती-घर "माडेल" या प्रतिरूप नहीं थे, बल्कि भीतरी प्रदेशों से उठाकर लाये गये वास्तविक पुराने घर थे। घरों को ठीक ज्यों का त्यों नये परिवेश में प्रतिष्ठित करके, उनके भीतर उसी समय के चौकी खाट बर्तन-मांडे और औजार रखे गये

थे। हालैंड में आर्नहेम के उद्यान-संग्रहालय में भी ऐसा ही प्रयत्न देखा, अन्यत्र इस पैमाने पर तो नहीं।

नागर-जीवन की ओर लौटना न वांछित है न सम्भव। लोक-जीवन को संग्रहालय की वस्तु मान लेना, या उसके संरक्षण का दम्भ भरना, उसकी जीवन-दायिनी शक्ति का अपमान करना है। इन संग्रहालयों पर बल देने का आशय यही है कि इस मूल-श्रोत से नागर-सभ्यता का सम्बन्ध नहीं टूटना चाहिए। नागर-सभ्यता सब आत्म-चेतन अथवा प्रबुद्ध होती है, लोक-संस्कृति में ऐसी आत्म-चेतना या आत्म-बोध नहीं होता। यह अपने आप में दोष नहीं हैं, ठीक वैसे ही जैसे कि सुन्दरी को अपने रूप का बोध न होना दोष नहीं है। आवश्यकता इसी बात की है कि लोक-जन को गलत ढंग का बोध देने का प्रयत्न न किया जाए, उसे शहर का नकलची या नकली शहरी होने की ओर प्रवर्तन किया जाय बल्कि इसकी सुविधा दी जाए कि वह भीतरी प्रेरणा से ही सहज विकास कर सके। रूपसी रूप-गर्विता न हो, इसमें कुछ भी वे—ठीक नहीं है, लेकिन वह व्यर्थ ही कृत्रिम प्रसाधनों के आकर्षण में न खो जाय या उनकी अनुपस्थिति में अपने को अधूरा या हीन न समझने लगे, इसके अनुकूल परिवेश उसे देने की की ओर उन्हें प्रवृत्त होना चाहिए जिनकी सभ्यता ने उसे उस कृत्रिमता से इतना परिचित करा दिया है कि अब वह उसके उबर नहीं सकती। लेकिन उससे किसी जोखम में भी नहीं पड़ती।

वेल्श की भाषा तो मैं नहीं जानता और उसकी भाषा की कविता भी नहीं समझता, लेकिन वहां के बीस हजार राष्ट्र कवियों के सन्देश का यही अभिप्राय मुझे उपलब्ध हुआ।

मृग मरीचिका का देश

डा० रघुवंश

जंगल का मृग कभी-कभी भटक जाता है । वह अपने झुंड से बिछुड़ गया है और वह अब बिल्कुल अकेला घूम रहा है, शंकित और सतर्क । कान खड़े किए आहट लेता हुआ झाड़ियों के बीच से रास्ता बनाता हुआ आगे बढ़ रहा है। किसी की आहट मिली नहीं कि उसने चौकड़ी भरी । जंगल की सघनता के बीच से भी मार्ग निकालता हुआ, वह छलांग मारता निकल जाता है । भटकते-भटकते वह थक चुका है, वह प्यासा है । जंगल के बीच स्थित सरोवरों, जलाशयों से वह दूर चला आया है । वह नहीं जानता किस ओर से उसे लौटना है । वह घने जंगलों के किनारे घास के मैदान के बीच खड़ा हुआ है । उसे कोई आहट मिलती है, वह सतर्क हो जाता है उसके कान खड़े हैं, उसका शरीर सिकुड़ गया है । उसी समय जंगल की झुरमुट से बाघ छलांग मारता है। बिल्कुल निःशब्द उसकी छलांग है। पर हिरन उसके पस्ते में आने से पहले ही चौकड़ी भर चुका है । और अब दोनों की दौड़ प्रारंभ होती है...। हिरन खुले हुए मैदानों में चौकड़ी भर रहा है । उसकी पतली टांगें जैसे हवा पर तैर रही हों और पीछे बाघ छलांगें मारता हुआ उसी प्रकार मानो हवा पर चढ़ता चला जा रहा है । घास के मैदानों में दोनों ऊपर ही ऊपर तैरते हुए सर-सर चले जा रहे हैं.......। फिर कुछ क्षणों के लिए हिरन अदृश्य हो जाता है, और बाघ चकित होकर रुक जाता है। वह आभास लेना चाहता है कि उसका शिकारी किधर गया । पर वह निरुपाय है । कुछ क्षण रुककर वह फिर जंगल की ओर उसी गति से लौट जाता है ..... और......।

वह हिरन थका-हारा खड़ा है । जंगल का मार्ग छूट गया है । वह रास्ता भूल गया है । उसकी प्यास बहुत बढ़ चुकी है । वह विकल होकर चारों ओर देखता है । आगे घास का मैदान भी समाप्त हो चुका है...। यह क्या है... सामने यह क्या है । कुछ दूर पर यह क्या फैला हुआ है । चमकती हुई अनंत

धारा। जल का चमकता हुआ यह विस्तृत प्रवाह। हिरन की मुरझाई हुई आत्मा उत्फुल्ल हो जाती है। वह पानी की तलाश में भटक रहा है। उसको प्यास ही तो व्याकुल कर रही है।...और यह अनंत जलराशि सामने लहरा रही है... वह उल्लास से फिर छलांग भरता है। उस लहराते हुए जल की ओर दौड़ पड़ता है। घास के मैदानों को वह पार कर चुका है और निकट ही बहने वाली वह धारा सामने अब भी उसी प्रकार बह रही है। जल-प्रवाह और हिरन की प्यास। बस एक चौकड़ी में पहुंचता है, उस प्रवाह के पास। लेकिन उसके पैरों के नीचे यह क्या है जो उसकी गति को इस प्रकार शिथिल कर रहा है...। उसकी गति क्यों शिथिल होती जा रही है। और यह पास लगने वाली धारा उतनी ही दूर बनी रहती है...। हिरन रुकता है, वह देखता है उसके चारों ओर एक ऐसा मैदान फैला है, जिसमें एक भी तिनका नहीं, एक भी पौधा नहीं वह चकित है, यह कैसा स्थान है, यह वह कहां आ गया है...पर वह प्यास से व्याकुल है और सामने वही सरोवर अपनी तरंगों में झलमला रहा है....। वह फिर बिना सोचे दौड़ पड़ता है उसी ओर....। वह दौड़ता रहता है, चौकड़ी भरता हुआ उसी ओर दौड़ रहा है, लेकिन वह पानी की रहस्यमय धारा उसी तरह आगे और आगे बढ़ती जा रही है ...। हिरन थकता जाता है। हवा के तप्त झोंके उसे विकल कर रहे हैं, नीचे जलती हुई रेत उसके शीघ्र-गति पैरों को झुलसा रही है।...प्यासा हारा-थका हिरन इसी तरह दौड़ता रहता है और उसके सामने की मृगमरीचिका उसी प्रकार आगे और आगे उसको भरमाती रहती है.......। रेत के अनंत विस्तार में, सूर्य किरणों के उज्ज्वल प्रकाश में झलमल करती हुई मरीचिका और उसके लिए भटकता हुआ बेचारा मृग।

सन् 38 ई० की गर्मियों में आगरा-अहमदाबाद पैसिंजर में एक थर्ड क्लास के कम्पार्टमेंट में बैठा हुआ इसी मृग की कल्पना में डूबा हुआ हूं। रात के दस बज चुके हैं, अछनेरा जंक्शन निकल गया है। नींद नहीं आ रही है। एक खाली बर्थ पर मेरा बिस्तर लगा है, भीड़ विशेष नहीं है (उन दिनों आज जैसी भीड़ नहीं चलती थी), उतरने चढ़ने वाले लम्बी यात्रा के मुसाफिरों को शायद जान-बूझ कर छेड़ते नहीं हैं। मैं बिस्तर के एक ओर खिड़की पर झुका हुआ सोच रहा हूं, अभी-अभी एक दृश्य मन में जैसे घटित हुआ...और उस क्षण लगता है, जैसे हिरन के रूप में मैं ही हूं जो उस प्रकार प्यासा थका जल की तलाश में अपनी मृगतृष्णा से उस मरीचिका के भ्रम जाल में फंस गया हूं। विफल होकर सामने देखता हूं : चांदनी फैल चुकी है, चांद ऊपर आ गया है। बाहर कुछ-कुछ दृश्य उभर आए हैं...। मैं सोचता हूं अपने जीवन के पिछले वर्षों में मैंने

राजस्थान के विषय में एक कल्पना की है, पाली है। इतिहास और साहित्य ने इस प्रदेश को मेरी कल्पना में रंगीन बनाकर ही प्रस्तुत किया है। राजस्थान वीरों का देश, अदम्य वीरता का देश। मध्य युग में वीरों ने अपनी आन के लिए, अपनी बात के लिए, अपने स्वाभिमान के लिए प्राणों तक को कुछ गिना नहीं, उसका मोह उनके मन में आया ही नहीं। कैसा था वह युग। कैसे थे वे वीर। उनके लिए जीवन की ममता, प्राणों का मोह कुछ अर्थ नहीं रखता था।

मैं देखने का अभ्यस्त रहा हूं...मेरी कल्पना में जैसे वह सब प्रत्यक्ष हो....रेत के विस्तृत मैदानों में राजपूत सेनाएं एकत्र हो रही हैं। उनके घोड़े हिनहिना रहे हैं, उनके केसरिया बाने चमक रहे हैं, उनकी तलवारें और भाले कौंध रहे हैं। उनके मुखों पर वीरता का ओज है...कहीं मृत्यु भय की छाया का आभास भी नहीं मिलता... कैसे हैं वे वीर और कैसी है इनकी गाथाएं...। अरावली की घाटियों में राजपूत सेनानी चारों ओर बिखर कर फैले हुए हैं। उनके घोड़े निर्द्वन्द्व भाव से टप-टप ढालों पर चढ़ उतर रहे हैं, शायद इसी घाटी में शत्रुओं के घेरने का उपक्रम है। उनके मन में उमंग है, आवेश है, उत्साह है। अभी थोड़ी देर में जब शत्रु-सेना का टिड्ढी दल घाटी में उमड़ पड़ेगा और तभी ऊपर से तीरों और पत्थरों की बौछार होगी। घाटी के दोनों छोरों से फिर राजपूत टुकड़ियां उन्हें घेर लेंगी और फिर भयानक मारकाट शुरू होगी...। कहां करते हैं ये भविष्य की चिंता और कैसी है इनकी युद्ध-नीति। इतिहासकार सोचता है कि कैसे थे वे वीर, जिन्हें युद्ध में विजय से अधिक चिंता थी अपनी वीरता की रक्षा की। जैसे युद्ध उनके लिए केवल वीरता की भूमि हो, हारजीत तो केवल प्रासंगिक विषय है। इतिहास का चतुर विद्यार्थी यह भी कहेगा—कैसी मूर्खता की बात है इन राजपूतों की जिन्हें युद्ध, युद्ध के लिए ही प्रिय है, विजय का उद्देश्य जैसे गौण हो। और ये कौन हैं...शृंगार किए हुए। अपने पतियों को विदा देने के लिए खड़ी हैं... उनको जो मृत्यु को वरण करने जा रहे हैं···पर नहीं वे स्वयं हंसती हुई मृत्यु-वरण करेंगी, जलती हुई आग में प्रवेश करेंगी, अपनी इच्छा से, जिससे उनके पति रणभूमि में मृत्यु का सामना पूरी वीरता से कर सकें। इनकी चिंता उनको विचलित न होने दे। धू-धू करती हुई अग्नि-शिखाओं को देखकर, वीर उन प्रियाओं को प्रणाम करते हैं और निर्द्वन्द्व होकर मृत्यु का वरण करने चल पड़ते हैं। यह कैसा है, उनका उत्सर्ग...यह कैसा है-इनका मृत्यु-वरण।

झक-झक-झक-झक करती हुई अहमदाबाद पेसिंजर भाग रही है और मेरी दृष्टि के सामने से जो गुजर रहा है, वह वीरान ऊजड़ विस्तार है। अब राजस्थान का क्षेत्र शुरू हो गया है। आगरा के आसपास हूं, पेड़ों की हरियाली

विरल हो चुकी थी। इधर तो छोटे आकार के बबूल, छिउल के पेड़ों के दर्शन हो रहे हैं। बीच में भूले-भटके किसी पेड़ की बड़ी छाया से लगता है कि आम या बरगद निकल गया है। वैसे सारा क्षेत्र बंजर जैसा लग रहा है...धूल अधिक उड़ रही है। न जाने कहां मेरी नींद खो गयी है। मन में यही सब उमड़-घुमड़ रहा है कि मैं राजस्थान में प्रवेश कर रहा हूं। वह राजस्थान जो मेरी कल्पनाओं का देश है, जहां सुनते हैं पहाड़ी-पहाड़ी पर किले हैं और उन किलों में मध्य युग का इतिहास सुरक्षित है। मैं कल्पना-प्रवण रहा हूं। मुझे इतिहास का आकर्षण सदा घेरता रहा है। इसलिए नहीं कि इतिहास का पुजारी रहा हूं। बचपन में इतिहास की वीर-पूजा मन को आकर्षित करती है। विशेषकर राजस्थान का जीवन और उसकी पहाड़ियों के गढ़, उसके प्रसिद्ध युद्ध...ये सब मन को घेरते रहे हैं...। और आज सोचता हूं कि मैं इन्हीं के बीच जा रहा हूं। क्या सचमुच मेरे मन का यह आकर्षण सच्चा सिद्ध हो सका या यह केवल मृगमरीचिका है जो मुझे इस प्रकार छलती रही है और आज भी भरमा रही है।

दो वर्ष बाद विधि के विधान से मुझे जयपुर में पढ़ने के लिए आना पड़ा। उस यात्रा में मैं क्या जानता था कि इस प्रकार राजस्थान में मुझे कई वर्ष रहने का अवसर मिल जाएगा। उस बार मैंने केवल यह जाना था कि आज के राजस्थान को देखकर तो अपना सारा मोह मृगतृष्णा ही लगता है। जयपुर की पीली-गुलाबी आभा में मन कुछ क्षणों के लिए अवश्य विमुग्ध हुआ। वहां की चौड़ी सड़कों की समानांतर रेखाएं अपना सौंदर्य रखती हैं। एक-सी इमारतें देख-कर मन विभ्रम में पड़ता है। यह अवश्य है कि इस नगर से मध्ययुग की याद आती है, पर वह कल्पना का संसार यहां कहीं भी दिखाई नहीं देता, जिसके लिए मन इतना आतुर-व्याकुल था। इन सड़कों पर विचरते हुए, राज प्रासादों के बीच घूमते हुए, राजा की सवारी को देखकर, राजपूत रेजीमेंटों को मार्च करते हुए देखकर, कहीं कुछ भी तो ऐसा नहीं लगता कि जिसमें राजपूत युग का कुछ है...। कहां है वह वीरता, कहां है मृत्यु को वरण करने की चुनौती, कहां है वह राजपूत वाहिनी। पर यह भी हो सकता है। बहुत दिन बाद मेरे मित्र केशव मेरे साथ जयपुर घूमने आए और तब उन्होंने कहा था कि जयपुर आने का प्रायश्चित तभी हो सकता है, जब उदय-पुर देख लूंगा और जयपुर के राजकीय शस्त्रागार में महाराजा मानसिंह की भारी तलवार को देखकर उन्होंने कहा था कि इसका परिहार तभी हो सकता है, जब राणा प्रताप के भाले को देखूंगा। मजाक में कही गई इस बात का

और कोई अर्थ हो चाहे न हो, पर इतना अवश्य है कि जयपुर देखकर कोई राजस्थान का अनुमान शायद नहीं लगा सकता।

मेरे मित्र की बात छोड़िए। उन्होंने जो कहा, उसमें उनके मन का ही नहीं अनेक लोगों के मन का भाव हो सकता है, फिर भी उस बात में कहीं कोई मजाक का पुट भी था। मैं और मेरे मित्र केशव दोनों तब तक जान चुके थे कि यह ऐसा ही नहीं है। जयपुर ही क्या उदयपुर, जोधपुर, बीकानेर, कहीं भी जाकर नहीं लगा कि वहां राजस्थान की आत्मा के दर्शन हुए हैं। उस राजस्थान को देखा है, जिसकी बचपन से कल्पना की है, जिसकी गाथाएं सुनी हैं, जिसके दुर्ग-दुर्ग पर, घाटी-घाटी में राजपूत वीरों ने जीवन और मृत्यु को एक साथ झेल लिया था। इन नगरों में जो वैभव है, शृंगार है, शान-शौकत है, वह अपने को बेचकर पाई हुई ही है, अपने स्वाभिमान के बदले में पाई हुई वस्तु है। जो राजस्थान की, राजपूतों की अपनी एकमात्र निधि थी, उसी को इन राज्यों के वंशधरों ने विदेशियों को इन दामों में बेच दिया है। अब ये राजा साल में छह मास विदेशों में देश की सम्पत्ति से रंगरलियां करते हैं और अपने देश तथा राज्य में वापस आकर भी इनका अधिकांश समय शिकार, पार्टी और डांस में बीत जाता है। वे एक विशिष्ट प्रकार से शिक्षित किए जाते हैं। उनकी शिक्षा-दीक्षा का भार एक प्रकार से ब्रिटिश सरकार ने अपने हाथ में ले रखा है। उनको ऐसी शिक्षा दी गई है कि अपने वंश के अनुकूल आभिजात्य सीखें, ऐश्वर्य के अनुसार उनको उसके उपभोग की शैली भी सिखाई जाती है।.........लेकिन क्या सचमुच ही उनको अपने वंश के अनुकूल शिक्षा नहीं मिलती है......। मध्य युग के राजस्थान में जीवन और मृत्यु के बीच भेद नहीं मान कर चला जाता था और क्या आज भी ये राजा, ये राजकुमार जीवन और मृत्यु के भेद को भूलकर आनंद-बिहार में नहीं लग जाते हैं, युद्ध वीरता, जौहर, उसकी आज आवश्यकता वैसे भी नहीं है। ब्रिटिश सरकार स्वयं उनकी मित्र है। मित्रता के फलस्वरूप ही एक रेजीडेंट सदा प्रत्येक राज्य में रहता है और उनको ब्रिटिश सेना की ऊंची से ऊंची श्रेणियां प्राप्त हैं।...फिर इसके अतिरिक्त काम ही क्या शेष है।

पर केवल ये नगर, राजधानियां ही राजस्थान नहीं हैं और न इन राजपूत राजवंशों के साथ ही सारी कल्पनाएं मिट सकती हैं। राजस्थान की बिखरी हुई रेत, फैली हुई अरावली की शृंखलाएं, उनके बीच में आकस्मिक प्रकट हो जाने वाली हरी-भरी घाटियां, नंगी चट्टानों तथा बड़े-बड़े पाषाण खंडों वाली पहाड़ी चोटियां, दूर तक चली गई बालू की ऊंची श्रेणियां, पर्वत की श्रंखलाओं पर दिखाई दे जाने वाले दुर्ग। इन सबसे आज भी ऐसा लगता है कि मध्ययुग का

राजस्थान सामने प्रकट हो रहा है। अब भी रूप आकार ग्रहण कर रहा है... कल्पना लेकर चलने वाले यात्री को हर क्षण यह आभासित होता है कि बस इन घाटियों से, इन ढालों पर, इन रेत के टीलों पर, इन दुर्गों से राजपूत सैनिक अपने घोड़ों पर सवार टप-टप उतरने ही वाले हैं।

ऐसा नहीं है कि जयपुर नगर में रहते हुए मुझे राजस्थान की माया ने कभी घेरा ही न हो। नगर की चौड़ी सड़कों, ऊंची इमारतों, हवा महल, सर-गासूली, बड़े-बड़े मंदिरों के साथ राजपूतों के युग के अंतिम दिनों की सुधियां मिली हुई हैं। पर यह सब सवाई जयसिंह का वैभव है जो औरंगजेब जैसे सम्राट का विश्वासपात्र था, जो अपने युग का ज्योतिष का श्रेष्ठ पंडित था और जिसकी कल्पना ने जयपुर को रंग रूप दिया है। सब कुछ एक ही रंग में रंगा हुआ, सर्वत्र एक ही तरह के भवनों और दुकानों से एक लय इस नगर को मिलती है,जो उसकी कल्पनाप्रवण राजपुरुष द्वारा आविष्कृत जान पड़ती है। त्रिपोलियों के अंदर प्रवेश कर दाहिने हाथ महलों की दीवार के सहारे आगे बढ़ने पर कुछ दूर जाकर ही जंतर-मंतर का मैदान मिल जाता है जिसमें नक्षत्रों को नापने के कितने ही यंत्र लगे हैं। उनको देखकर सवाई जयसिंह के विद्याप्रेम का साक्षात् स्वरूप गोचर हो जाता है। आगे चलकर हवा महल के प्रकोष्ठों की जालियों में से आती हुई झर-झर हवा के झोंके जयपुर नरेशों के वैभव का स्मरण दिलाते हैं। और इन महलों से लगा हुआ गोपाल जी का मंदिर, जलाशय भी कुछ याद जरूर दिलाते हैं। इनको देखकर लगता है कि यहां सुख-शांति के दिनों में भक्ति और ऐश्वर्य का संगम संभव हो सका है। पर ! इससे अधिक वहां इस नगर के महलों में और क्या संकेत मिलता है। सुनते हैं इन महलों में पिछले महाराज माधोसिंह की सैकड़ों रखैलों में से अब भी अनेक जीवित हैं, जिनके प्रबंध के लिए एक अलग विभाग ही है। इन महाराज की कथाओं में सवाई रामसिंह की कथाओं जैसा राजपूती भाव भी नहीं है यह अवश्य है कि यहां की राजभक्त प्रजा इन बातों को भी गौरव के साथ याद कर लेती है कि महाराज अंग्रेज गवर्नर जनरल से हाथ मिला कर गंगाजल से ही उसे शुद्ध करते थे। कहते हैं, उनके पैरों में प्रतिदिन बदली जाने वाली जूतियों से कितने ही परिवारों की रोजी चल जाती थी, और उनकी शक्ति....... उनकी सैकड़ों रानियां न जाने कितनी जनश्रुतियां......पर उनमें एक भी ऐसा नहीं जो रामसिंह जी के उस बुढ़ियावाले किस्से के निकट हो। किस प्रकार वह ऊंट की पीठ पर रात ही रात में सैकड़ों मील की यात्रा करके राजधानी वापस आ जाते थे, और किस प्रकार एक बुढ़िया के पुत्र बनकर उन्होंने उसका दुःख-दर्द दूर कर दिया, यह सब हमने अपनी बचपन की किताबों में पढ़ा था। लेकिन

यह सब भी इस नगर की भीड़-भाड़ और बड़े बाजारों में आभासित नहीं होता है, यही जान पड़ता है कि कोई नया व्यावसायिक नगर विकसित हो रहा है।

लेकिन यह ऐसा नहीं है। इस नगर को किन्हीं नीरव क्षणों में देखने से लगता है कि इसमें भी राजपूत युग की याद कहीं छिपी हुई है। हमारे घर की ऊंची छत से चांदनी रातों में नगर के पच्छिम ओर से घेरती हुई पहाड़ी श्रेणियां अपनी काली छायाओं में व्यक्त, स्पष्ट हो जाती है और उसके छोर पर नाहर गढ़ खड़ा हुआ है और इन प्राकारों को देखकर मुझे यह नगर अपनी रक्षा के लिए आज भी सतर्क है, जान पड़ता है। नगर की शहर पनाह के बाहर अजमेर की सड़क के नये घाट तक पहुंच कर लगने लगता है कि कहीं पास ही वह मेरी कल्पना का लोक आविर्भूत होने वाला है। इस घाट में प्रवेश करते ही उसकी दोनों ओर की शृंखलाओं के बीच में ऐसा जान पड़ता है मानो अभी उन पर से राजपूत योद्धाओं के घोड़े टप-टप करते हुए उतर आएंगे। अभी कुछ ही क्षणों में सारी घाटी राजपूत वीरों से उमड़ पड़ेगी।........कभी ऐसा भी लगता है जैसे किसी मोड़ पर आकस्मिक रूप से कोई बाघ निकल पड़ेगा और वह अपनी शान में गरदन टेढी किए हुए इस प्रकार निकल जाएगा कि मानो उसे हमारे जैसे लोगों की कोई चिंता ही नहीं है, फिर वह सड़क पार किसी गुफा में अदृश्य हो जाएगा। इसी तरह सूरज-पोल के रास्ते गल्ता घाटी की चढ़ाई पर, मोड़ों पर भी अनुभव होता है कि कहीं किसी राजस्थानी दुर्ग के मार्ग पर हम आगे बढ़ रहे हैं और ऐसा ही आमेर के चढ़ते हुए रास्ते पर लगता है, विशेष कर उस पर दिखाई देती हुई किले की दीवारों को देखकर।

जयपुर नगर में रहने वाले के लिए आमेर का पुराना नगर और महल प्रायः ही देखते रहने की वस्तु हो जाती है, ऐसी कि उनके प्रति मन का सारा आकर्षण ही नष्ट हो चुका होता है। जो भी शौकीन मेहमान आएंगे, मन या बेमन से उन्हें जयपुर की मुख्य चीजों के साथ आमेर ले जाकर दिखाना भी आवश्यक हो जाता है। आज के युग में जो बात फैशन के अंतर्गत आ जाती है, वह हमारे जीवन का अनिवार्य अंग बन जाती है, फिर उसके लिए तर्क का प्रश्न नहीं उठाया जाता। ऐसे भी लोगों के साथ कभी सुन्दर से सुन्दर स्थलों और महत्वपूर्ण से महत्वपूर्ण स्थानों पर जाना पड़ता है, जिनके लिए देखना सचमुच "देखने" की क्रिया से अधिक अर्थ नहीं रखता। ऐसे फैशन के पुजारी अरसिक लोगों के साथ लगे रहने की विवशता हम सब को कर्त्तव्य के नाम पर निभानी पड़ती है।

वास्तव में आमेर और जयपुर में अलग युगों का अंतर दृष्टिगत होता है। जयपुर प्रधानतः नगर है, प्राचीन और चारों ओर के दुर्ग उसकी रक्षा के लिए है। आमेर स्वतः दुर्ग है। एक पहाड़ी दुर्ग जिसके नीचे नगर का विस्तार था। राजपूतों और दक्षिण के पहाड़ी दुर्गों की यही विशेषता है। जयपुर मैदान के प्राचीरबद्ध नगरों की शैली का है। प्रतापसिंह के प्रतिद्वन्द्वी अकबर के प्रबल सेनानी महाराज मानसिंह की राजधानी यही आमेर थी। सचमुच यह दुर्ग सुन्दर तथा सुरक्षित स्थल पर चुना गया था। पहाड़ी शृंखलाओं को घेर कर दुर्ग की बाहरी प्राचीर बनाई गयी है और एक शिखर की किंचित समतल स्थिति पर आमेर का महल उठाया गया है। इसी के ठीक नीचे आमेर का नगर फैला हुआ है जो आज केवल ध्वंसावशेष के रूप में है। उसमें दो-तीन मध्ययुगीन मन्दिर शेष रह गये हैं। खण्डहरों से अवश्य अनुमान लगाया जा सकता है कि किसी समय यह अच्छा नगर रहा होगा। आमेर महल की भी अपनी निजी विशेषता बहुत कम है। उसके दीवाने-आम और दीवाने-खास बहुत कुछ आगरा के किले के अनुकरण के हैं, केवल अपेक्षाकृत कम वैभवशाली। उसी प्रकार का शीशमहल है। जिसमें खड़े होकर देखने से अपनी ही सहस्त्रों आकृतियां झलमला उठती हैं और बिहारी का प्रसिद्ध दोहा प्रत्यक्ष हो जाता है। कई लोग उसमें दियासलाई जलाकर सहस्त्रों मशालों के एक साथ जल उठने का दृश्य देखने में अधिक कौतुक का अनुभव करते हैं। हमाम की रचना भी उसी प्रकार की है, उसके जल प्रवाह की प्रक्रिया भी वैसी ही है। महल के अन्दर की फुलवारी की रविशों में भी, मुगलों का प्रभाव झलक जाता है। मरदाने भाग से जनाने भाग में जाने का एक तंग रास्ता है, जिसमें स्त्रियों से खींची जाने वाली गाड़ी का मार्ग है। महलों में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिए इसी का प्रयोग किया जाता था। जनाने भाग का जिसे वास्तव में रनिवास कहना चाहिए वह अंश तो अपेक्षाकृत सुन्दर है, जिसमें प्रधान रानियों का स्थान है, पर उसका एक अंश और भी है जो महाराजाओं की अन्य स्त्रियों के लिये है। यह भाग भद्दा ही कहा जा सकता है। एक चौकोर घेरे में बहुत-से अलग-अलग क्वार्टर्स जैसे हैं, इनमें होकर एक रास्ता गया हुआ है। कमरों की बनावट में अथवा सज्जा में कहीं कोई सौंदर्य नहीं, केवल रहने के स्थान भर कहे जा सकते हैं। इनको देखकर उन अनगिनत नारियों की स्थिति और उनकी मर्यादा का साफ भान हो जाता है। केवल पुरुष के उपभोग की सामग्री के रूप में वे इन कोठरों में जैसे बंद रहती हों।

आजकल आमेर के महल में देवी का मन्दिर बहुत प्रसिद्ध है। आमेर की देवी की जयपुर में बहुत प्रतिष्ठा है। कहते हैं यह देवी महाराज मानसिंह के द्वारा बंगाल से लाई गयी थीं। किंवदंती तो यहां तक है कि इन देवी को पहले

नरबलि तक देने का विधान था, पर इतना तो अब भी चलता आ रहा है कि नवरात्रि के दिनों यहां कितने ही भैंसों और सैकड़ों बकरों की बलि चढ़ जाती है। यह छोटा सा मन्दिर अपने नये चांदी के द्वारा तथा संगमरमर और संगभूसा के फर्श से काफी भव्य लगता है, व्यवस्था भी अच्छी है। राज्य की ओर से जागीर तो लगी ही होगी, साथ ही नागरिकों की पूजा भी कम नहीं चढ़ती। मेरा मन अनेक बार आश्चर्य से भर गया है, जब मैंने देखा कि देवी के भक्तों में सभी वर्गों के लोग समान रूप से हैं। आधुनिक शिक्षा प्राप्त लोगों का भक्ति-भाव देवी के प्रति सदा मुझे रोचक लगता है। मेरे जीजाजी के परिवार के लिए भी वे इष्ट देवी के समान ही पूज्य हैं और मैं ठहरा इस दृष्टि से पूरा नास्तिक। मेरे इस भाव को जानने के कारण इस परिवार के लोग सदा यह चाहते थे कि मैं मन्दिर में न जाऊं, क्योंकि उन्हें भय था कि मेरे भाव से देवी रुष्ट हो सकती है, वैसे देवी-देवताओं के प्रति, विशेषकर मन्दिर के वातावरण में अन्य भक्तों की भावना का समादर करने के भाव से मैं आदर प्रकट करता हूं और नमन भी करता हूं। पर सचमुच इन बर्बर देवी के प्रति मेरे मन में विद्रोह की मात्रा भी कम नहीं थी। उनके सम्मुख आंखें बंद करके खड़े हुए भक्तों को देखकर मेरे मन में उनकी भक्ति-भावना से कहीं अधिक उनकी स्वार्थपरता उभरती है।

राजस्थान में फैली हुई विस्तृत रेत का अनंत विस्तार ही नहीं है, बीच-बीच में उभरकर शृंखलाओं, श्रेणियों में फैलती हुई पहाड़ियों के दृश्य भी आ जाते हैं। ऐसा नहीं कि रेत के विस्तार का अपना सौन्दर्य न हो। रेत के अनंत विस्तार और उसके एकरस चले गये समतल में सौन्दर्य वही है जो हिमालय के हिमाच्छादित ऊंची-ऊंची शिखर-शृंखलाओं में अपने विराट वैभव के साथ आविर्भूत हो उठता है। उस सौन्दर्य के सामने मनुष्य के मन में ग्रहण करने की शक्ति कुण्ठित हो जाती है, वह ठगा-सा आत्म-विस्मरण की स्थिति में समर्पित हो जाता है। यह सौन्दर्य प्रभावित नहीं करता, वरन् अभिभूत करता है, आत्मसात् कर लेता है। मैंने अपनी विभिन्न उद्देश्यहीन यात्राओं में रेगिस्तान का यह विराट् वैभव देखा है, और देखकर मन में हतप्रभ हो जाने की स्थिति के अतिरिक्त किसी भाव का भान नहीं रह गया है। शेखावटी क्षेत्र में जयपुर राज्य के रेल-पथ से यात्रा करते समय मैंने आकस्मिक रूप से देखा है कि सूर्योदय के समय रेत के विस्तार से, उसकी लहराती तरंगों के ऊपर सूर्य का बड़ा सा लाल गोला उठता आ रहा है। पृथ्वी से इस प्रकार उगता हुआ सूर्य, जिस सौन्दर्य की कल्पना को जाग्रत करता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। आकाश के साथ ही सूर्य की लाल रश्मियां रेत की कोमल तरंगों को और भी

कोमल लालिमा से रंजित कर देती है। सौन्दर्य का यह चित्रफलक कुछ ही क्षणों में विलीन हो गया। पर उन क्षणों में जो झलक गया वह मन प्राणों को बहुत गहराई से कहीं छू गया। मैं देखता हूं कि रेत की हल्की लहरों में फैले हुए प्रसार पर धूप फैल कर श्वेत-पीत की अद्भुत चमक उत्पन्न करती है। बीच में कहीं रिल्लों के टीलों के उभरते हुए आकार आ जाते हैं और उनकी हल्की-हल्की शृंखलायें उस एकरस समतल में पहाड़ी श्रेणियां जैसी लगती हैं। धूप में सूर्य की रश्मियों से चमकती हुई इन श्रेणियों का वैभव एक अलग अनुभूति का विषय है। संध्या समय सूर्य का बहुत बड़ा लाल गोला इन्हीं तरंगों में जब डूबता रहता है, उस समय सारा रेगिस्तान का क्षेत्र गहरी लालिमा से उद्भासित हो उठता है, देर तक धीरे-धीरे गहरा होकर धूमिल होते-होते मिट कर अंधियारे में खो जाता है। ऐसी ही अनेक कल्पनायें रेगिस्तान में साकार होती रही हैं। जिनको संजो पाना सदा सहज नहीं रहा है। जीवन की अनेक स्थितियों के साथ वे घुली-मिली हुई हैं।

परंतु इसी राजस्थान में अरावली की बिखरी श्रेणियां हैं, जिनके बीच में न जाने कितनी सुन्दर घाटियां एकाएक ही आविर्भूत हो जाती हैं। इन पहाड़ी शृंखलाओं पर न जाने कितने सुदृढ़ स्थान खोज-खोजकर गढ़ और दुर्ग बनाए गये हैं। बड़ी-बड़ी विशाल चट्टानों को काट-काट कर इनकी रचना की गयी है। जिनको देखकर आश्चर्य से मन भर जाता है। बिखरे हुए रेत के मैदान के बीच में यात्री को इस बात का किंचित बोध नहीं हो पाता कि इसी क्षेत्र में कहीं प्रकृति के पहाड़ी और बनैले सौन्दर्य का ऐसा विविध रंग रूप वाला दृश्य भी उपस्थित हो सकता है। परंतु राजस्थान के पूर्वी भाग में इस प्रकार के भ्रम यात्री को अनेक बार होते हैं। जयपुर नगर स्वयं पहाड़ी श्रेणी से घिरा हुआ है, परंतु वे बहुत ऊंची पहाड़ियां हैं और सूखी हैं। चतुर्दिक अत्यंत सूखा क्षेत्र होने पर भी जयपुर नगर में रहने वाले व्यक्ति को कभी जलाभाव का अनुभव नहीं होता। इस रहस्य का उद्घाटन बाद में हुआ। जब ज्ञात होता है कि यह पानी इस नगर को चौबीस मील स्थित रामगढ़ के बांध से मिलता है।

रामगढ़ के बांध की यात्रा जयपुर से एक पिकनिक जैसी लगती है। पहले-पहल जब बांध जाने का प्रस्ताव किया गया, तब मैं काफी उत्साहित हुआ। शायद जयपुर से बाहर जाने का यह पहला अवसर है और सोचता हूं कि कहीं राजस्थान के उस रूप का दर्शन मिल जाए, जिसकी कल्पना मेरे बाल-मन पर गहरी अंकित हो चुकी थी। रामसिंह ने मोटर का हार्न दिया तो मन में विश्वास जागा कि शायद आज निर्विघ्न जाना हो सकेगा। कई बार प्रोग्राम बनकर और तैयारियां होकर भी जाना रह गया था, इस कारण मन में शंका अंत तक बनी

हुई है। हमारे जीजाजी का स्वभाव ही ऐसा है, वे सरकारी दौरे पर जाने का सारा कार्यक्रम बनाकर मोटर में सारे सामान के रख दिए जाने पर भी किसी साधारण लगने वाले कारण से भी सब कुछ स्थगित करके सामान उतरवा कर सब जगह सूचना भेजने के लिए उसी समय प्यादा भिजवा सकते हैं। कारणों में मान लीजिए किसी को जुकाम हो गया है, या किसी का सिर ही दुखने लगा है या कोई शकुन ही बिगड़ गया है। यही कारण है कि जीजा जी के साथ बने हुए कार्यक्रम के विषय में मैं क्या वे स्वयं भी कभी अंततः निश्चित नहीं हो सकते।

ऐसा नहीं कि आज कोई बाधा आई ही न हो। माया की तबीयत बहुत अच्छी नहीं है और जीजाजी कह सकते हैं कि फिर कभी प्रोग्राम रखा जाए। पर उन्होंने स्वयं यह आग्रह प्रकट किया कि माया को बांध पर जाने से कुछ लाभ ही होगा, केवल अधिक श्रम उसे नहीं करने देना चाहिए। किसी प्रकार अंत तक जीजी के बीच में पड़ने से कि आज बांध जाना ही चाहिए, चाहे जीजाजी स्वयं ही क्यों न रुक जाना चाहें, हम लोगों का कार्यक्रम निश्चित हो सका। साथ में जीजाजी, सुन्दर, राम, माया तथा सरोज हैं। सरोज की हंसी किसी न किसी बात पर उलझ रही है। जीजी उसमें साथ दे रही हैं, वह कहती "चाचा का भी देश कैसा है जहां आदमी को डूबने के लिए चुल्लू भर पानी का भी अकाल जान पड़ता है। चाची, उस बार देखा था, बनास की जिसको यहां वाले महा-नदी मानते होंगे, एक पीपे का पुल, छलांग मारने भर की तो उसकी चौड़ाई है। पर दूर से पेटा देखकर लग रहा था कि सचमुच किसी बहुत बड़ी नदी का कछार हो" जीजी भी इस बात पर जीजाजी को छेड़ रही है। "अरे सरोज, यहां वालों को चुल्लू भर पानी कहां चाहिए, यहां वाले बड़ी आन वाले हैं, उनके लिए एक बूंद पानी भी बहुत है।" मैं अपने आप में डूबा हुआ हूं, मैं उन सबकी बातों में हां-हूं, भरकर लेता हूं। राम खीझ में है, और राजपूत वीरता और गौरव की दुहाई दे रहा है। और अपने प्रदेश की बात रखने के लिए मैदान की सर्दी गरमी और पिचिर-पिचिर बरसात की घोर आलोचना कर रहा है पर मेरा ध्यान उसकी ओर भी नहीं है। जीजाजी रामगढ़ के बांध का इतिहास बता रहे हैं और उसकी स्कीम को भी समझा रहे हैं। पर मेरा मन उनकी बातों में भी नहीं घिर रहा है। आमेर की पहाड़ी को एक ओर छोड़ आने के बाद से ही मेरा मन इस प्रदेश के इतिहास पर घुमड़ने लगा है। इस रेतीले क्षेत्र में, पहाड़ियों के बीच में तथा घाटियों और उपत्यकाओं में आदमी ने कितना संघर्ष झेला है, प्रकृति से ही नहीं, आदमी से, आदमी की खूंखार प्रकृति से। राजस्थान की भूमि ने आदमी के विकास-पथ के चरण चिन्हों को

निश्चय ही ग्रहण किया है। आज हम जब इतिहास के कोहासे को बेधकर देखते हैं, तब बहुत सी बातें हमको आधुनिक संदर्भ में बचकानी भले ही लगें, पर उनके माध्यम से मनुष्य ने अपने अनेक मूल्यों को जाना और पहचाना था। गौरव, वीरता, स्वाभिमान, शरणागत की रक्षा, वचन निर्वाह आदि ऐसे ही मूल्य हैं…। और हां, सचमुच उन्होंने अपनी जान पानी से नहीं, आग की धधकती हुई ज्वाला से बचाई है। सचमुच वह जीवन और मृत्यु के प्रति सहज समान असमृत भाव अद्भुत रहा है।

बांई ओर मील के पत्थर निकलते जा रहे हैं और हम बांध के पास पहुंच रहे हैं। बांध पर पहुंचते-पहुंचते हमारे सामने जल का मीलों विस्तृत सागर गोचर हो चुका है। कुछ क्षणों तक आंखों को जैसे विश्वास ही नहीं हुआ। चारों ओर से इतने सूखे प्रदेश में एकाएक यह इतना बड़ा जल-विस्तार कहां से निकल पड़ा। कहां से यह इतना जल एकत्र हो जाता होगा। जीजाजी ने बताया कि यह ऐसा ही नहीं है। राजस्थान के एक भाग की औसत वर्षा चौबीस इंच है। बरसात के दिनों में यहां की सूखी पड़ी नदियों में जोर का सैलाव आ जाता है, उस समय उनका पाट इतना बड़ा और गहराई इतनी अधिक हो जाती है कि घंटों मार्ग बन्द हो जाते हैं। यह पानी उन्हीं दिनों एकत्र कर लिया जाता है। बांध पर हमारी मोटर दौड़ रही है और जल के विस्तार पर दृष्टि डालने से यह सत्य अपने आप स्पष्ट हो रहा है। दो पहाड़ी श्रेणियां घेरा डालती चली गई हैं, उन दोनों के बीच के खलार में यह जल-विस्तार फैला हुआ है। वस्तुतः जल-विस्तार की सतह ने उस सारे क्षेत्र को समतल बना दिया है। हम लोग बांध पर उतर कर टहलने लगे, कई मोटर बोटें पानी चीरती हुई तैर रही हैं। लगता है उन पर साहब लोग सैर के लिए निकले हैं, उनकी कारें बांध के रेस्ट हाउस के समीप चमक रही हैं। सरोज का मन मोटर-बोट की सैर के लिए ललचा उठता है। राम और श्याम भी कम लालाइत नहीं हैं। मैं और माया साधारण नाव के पक्ष में हैं, जीजी हमसे सह-मत हैं। पर जीजाजी हैं कि उन्हें पानी में उतरने मात्र से भय लगता है। मोटर-बोट के लिए आज्ञा आदि प्राप्त करने का झगड़ा भी है, रियासती प्रबन्ध में किराए से अधिक परमिशन का चक्कर रहता है और साधारण नाव में जीजा जी किसी प्रकार तैयार नहीं हो सकते हैं, यद्यपि वे कह यही रहे हैं कि क्या फायदा, वहां से क्या अच्छा लगेगा, चाय आदि के इंतजाम के लिए फिर वक्त कहां रह जाएगा और उसके बिना पिकनिक का मजा आधा रह जाएगा।

फिर मैं सबसे अलग बहुत देर तक पहाड़ियों की उठती गिरती श्रेणियों को देखता रहा। उन पर छोटे सघन पेड़ों की हरियाली छाई हुई है, बरसात में ये श्रेणियां अकस्मात अत्याधिक हरी-भरी हो जाती हैं। पर बीच-बीच में नंगी चट्टानें भी धूप में चमक रही हैं। जल के चमकदार विस्तार पर दृष्टि रेंगती हुई मानो इन हरी चोटियों पर चढ़ रही है और मैं भूल चुका हूं सब कुछ केवल अनुभव होता है कि मैं (मेरा अस्तित्व) बांध के जल-विस्तार पर तैर कर शृंखलाओं को पार कर रहा हूं। मैं जो राजपूत योद्धा हूं, मैं जिसने अभी शत्रु सेना को तहस-नहस कर दिया है और उनको बीच से चीरता हुआ निकल गया हूं। मैं शिखर से शिखर पर होता हुआ फिर राजपूत वाहिनी एकत्र करूंगा, फिर एक बार अपने अपमान का बदला ले सकूंगा। शत्रु को पराजित करके देश को स्वतंत्र कर सकूंगा।... एकाएक मेरी दृष्टि उन मोटर-बोटों पर जाती है जिनमें अंग्रेज स्त्री-पुरुष बिहार कर रहे हैं, वे हमारे राजा हैं, शासक हैं....इस राजस्थान के भी, इसी राजस्थान के... और मेरा मन न जाने कैसी वितृष्णा से भर जाता है।

माया ने मुझे एकांत में ढूंढ़ लिया है, और फिर मुझे सबके बीच में जाना ही पड़ता है। तय यह हुआ कि जब तक मथुरासिंह और रामनाथ चाय का प्रबंध पूरा करते रहें, हम लोग पहाड़ी श्रेड़ियों के बीच की सड़क पर घूम फिर आए। बांध के इस छोर पर दोनों पहाड़ियां एकदम समीप आकर लगभग समानांतर चली हैं और उनके बीच से सड़क गयी है, बिल्कुल जंगल के बीच से। यह सड़क शिकार के उपयोग की है, ऐसा बताया जाता है। ऐसा आभास हो रहा है कि यह रास्ता किसी अत्यंत सुन्दर उपत्यका में खुल जाएगा। एक मील भी नहीं आए होंगे कि वापस चलने की आज्ञा मिल जाती है। वे आज्ञा को आज्ञा के समान कभी नहीं रखते केवल एक सुझाव मात्र हो पर जैसे हमारे लिए वह अंतिम बात ही होती है। उसके आगे उल्लंघन करने का अधिकार केवल जीजी को ही है, पर वे स्वयं इतनी दूर में हांफ गयी हैं। अब तक दोनों पहाड़ियां फैलने लगी हैं और जंगल भी विरल हो चले हैं। उपत्यका के स्वप्नलोक का मोह छोड़कर हम वापस लौटते हैं। पहाड़ी पार्श्व से जल की पतली सिलसिलाती हुई धाराएं बह रही हैं और अनेक पेड़ चट्टानों की संधि से निकल कर फैले हुए हैं।

वापस आने के बाद ही सब लोग खाने-पीने के चक्कर में इतने लीन हो जाते हैं कि जैसे उनके लिए यह चतुर्दिक का दृश्य बोध डूब चुका है। पर मेरे मन को इस दृश्य ने अब भी छोड़ा नहीं है। संध्या हो रही है पश्चिम में सूर्य डूबता हुआ दिखाई दे रहा है। एक शृंखला के बीच में दो शिखरों के मध्य बिन्दु

पर सूर्य ढलता जा रहा है, उसकी तिर्यक किरणें जल विस्तार पर नाच रही हैं। आकाश की लाली जल में दूर तक प्रतिबिम्बित है। एक बार मन में आता है, कि सबका ध्यान इस ओर आकर्षित करूं। पर सबको चाय में मस्त देख कर, फिर अपने आप में डूब गया हूं। चाय का प्याला मेरे हाथ में है, पर मैं सारे वातावरण में विचर रहा हूं। लालाभ आकाश, रक्तिम वर्षा के जल-विस्तार और धूमिल होती चोटियों पर मैं जैसे एक साथ बिखरा जा रहा हूं। जीजी टोकती हैं—"भइया, चाय ठंडी हो रही है, तुमने तो कुछ खाया भी नहीं। घर पहुंच कर तुमको फिर, फौरन भूख लग जाएगी।" जीजा जी कहते हैं—"ये फिलासफी के मूड में हैं, इस वक्त तो किसी समस्या में उलझे हैं।" मैं लज्जा जाता हूं, यद्यपि जानता हूं कि इसमें ऐसी क्या बात है। मैं केवल कह देता हूं—"क्या सुन्दर संध्या है" औरों का भी तब ध्यान जाता है, और सभी डूबते हुए सूर्य को देखने लगते हैं। मैं अनुभव करता हूं, इस कोलाहल के बीच सारा दृश्य मेरे लिए खो गया है। मैं जीजी से हाथ पसार कर (मावा मिसरी) मिसरी मांग लेता हूं, जयपुर के सोने हलवाई का "मावा-मिसरी" बहुत मशहूर है।

सड़क मोड़कर दाहिनी ओर एक पहाड़ी को छोड़कर बैराठ के सिवान में निकलती है। हमारी कार अब इसी सिवान में प्रवेश कर चुकी है। सामने सड़क से कुछ दूर हट कर कुछ आदमियों की भीड़ लगी हुई है। कटी डालों तथा टहनियों को इकट्ठा कर ऊंचा सा ढेर लगाया गया है। हमारी सहज जिज्ञासा जाग गई, और सड़क पर एक आदमी, जो महकमा जंगलात का सिपाही है, हाथ देकर कार को रुकवाता है। जीजाजी को उसने बताया कि यहां पिंजरे में एक बहुत बड़ा बाघ (शेर) पकड़ा गया है और वह आगे की आज्ञा की इंतजार में यहां तैनात है। जीजाजी की कार से उसने अपने मह-कमे के किसी बड़े अफसर का अंदाज लगाया था। फिर भी हम लोग उस पिंजरे में बंदी हुए जंगल के राजा के दर्शन करने के लिए उत्सुक हैं। जीजाजी ने स्वत: प्रस्ताव किया और हम सब कार से उतरकर आगे बढ़ते हैं। महकमा जंगलात का सिपाही बता रहा है कि इस इलाके में एक शेर आदमखोर हो गया है और उसी को पकड़ने का हुक्म हुआ है। हम लोगों ने उसको पकड़ने की कई बार कोशिश की, चारा बांधकर परकाया भी। पर वह मूंजी हाथ नहीं आया। कल इस जाल में यह शेर फंस गया है। यह बाघ आदम खोर बाघ नहीं है, वह हमसे बच निकला है।

हम लोग देखते हैं कि कटघरा जिसमें बाघ बंदी है, चारों ओर से हरी डालियों-टहनियों से पाट दिया गया है। कटघरे के चारों ओर इकट्ठा हुए

आदमियों को देखकर बाघ पिंजड़े में ही दहाड़-दहाड़ कर अपने को हानि पहुंचा सकता है। इसी कारण उसको ढांक दिया गया है। फिर भी बीच-बीच में उसकी सारे प्रदेश को कंपा देने वाली गर्जन गूंज जाती है। सिपाही अपने आदमियों के साथ डालियां और टहनियां हटा रहा है, जिससे हम लोग बाघ को प्रत्यक्ष देख सकें। तब तक गांव का एक गूजर विनम्रता पूर्वक जीजाजी को यह समझा रहा है कि यह इतना बड़ा बाघ किस प्रकार शिकारियों के हाथ आ गया। उसके कान की मुर्की चमक रही है और मुरेढ़ा की एक लर ढीली होकर माथे पर लटक आई है। उसने बताया है कि दाहिनी ओर की पहाड़ी से बांई ओर की पहाड़ी श्रेणियों की ओर जाने का रास्ता यहीं से है और इसी ओर पानी का सोता है, जहां जानवर पानी पीते हैं। फिर उसने पड्डा के बांधने का स्थान दिखाया जिस पर बाघ पहले टूटा होगा, एक आध अवशेष चिन्हों से यह स्पष्ट है। यहां से उसको कटघरे में बंधे हुए बकरे की गंध मिली होगी। बकरे की मादक गंध को पाकर बाघ के लिए रुकना कठिन हो गया। वह निश्चित कटघरे में प्रवेश कर जाता है, शायद अंदर पैर रखते समय उसका मन एक बार शंकित हुआ हो। पर लोम....कटघरे के आतंक से जड़-नीरव बकरे को इधर उसने दबोचा और उधर उसका खटका दबा तथा पल्ला नीचे आ रहा।...अब जंगल का स्वच्छन्द विचरण करने वाला पशुराज बंदी हो चुका है। उसने अपने बंधन की इस स्थिति से विद्रोह करने के लिए सारे कस्बे और पहाड़ियों को कंपा देने वाली गर्जना की, अपने को मुक्त करने के लिए कई बार दहाड़ की। पर लोहे के मोटे-मोटे सीखचों वाले इस कटघरे में उसके सारे प्रयत्न, उसका सारा गर्जन-तर्जन व्यर्थ हो गया।

अब टहनियों और डालों के हट जाने से सीखचे दिखाई देने लगे हैं और उनके बीच में बाघ की मांसल पुष्ट चमकती हुई धारीदार देह भी झलकने लगी है। आहट पाकर उसने फिर एक बार मन को कंपाने वाली दहाड़ की, चारों ओर का वातावरण जैसे कांप गया हो। यदि मन में यह भाव प्रधान न होता कि यह पिंजड़े के अंदर बंद पशु की गरज है, तो इसको सहन कर पाना सम्भव नहीं था। हम सहज ही दो-चार कदम हट जाते हैं। लेकिन बाघ उस गर्जन के बाद फिर नहीं गरजा, वह पिंजड़े के एक कोने में दुबक गया, पर इस भाव से नहीं कि वह भयभीत हो गया है, ऐसा लगता है कि वह हमको उपेक्षा भाव से देखता है। पिंजड़े में केवल कुछ काले-काले खुर पड़े हैं और पड्डे अथवा बकरे का कोई अवशेष नहीं है। लोग बतलाते हैं कि मारे क्रोध के बाघ ने उसकी हड्डी तक सब कुछ चबा डाला है।

मेरे सामने पिंजरे में बाघ है। मैंने जीवन में पहली बार जंगल का बाघ देखा है। सचमुच जंगल पहाड़ों पर मुक्त विचरण करने वाले बाघ तथा शेरों की कल्पना अजायबघरों के कटघरों में बंदी बाघों तथा शेरों से नहीं की जा सकती। आज मुझे लगता है कि मैं अब तक बाघ के विषय में कैसे भ्रम में था। लखनऊ, जयपुर के जू में पाले गये बाघ केवल बाघ की प्रतिछाया जान पड़ रहे हैं। जान पड़ता है वे निर्जीव चलचित्र मात्र हैं। वास्तविक बाघ तो सामने है प्रत्यक्ष। यह लगभग अठारह घंटे से इसी पिंजरे में बंदी है, फिर भी उसके शरीर की मांसपेशियों में जैसे विद्युत-तरंगें नाच रही हों। उसके पुष्ट और मांसल शरीर में आकार और स्वास्थ्य का अद्भुत सौन्दर्य है, जो मन को आकर्षित करता है। एक क्षण में मुझे लगता है यह पिंजड़ा गायब हो गया है और सामने का बाघ मुक्त है, स्वतंत्र है। पहाड़ी श्रेणियों के बीच सूरज डूब रहा है। और संध्या की लालिमा में आकृति अनुरंजित हो उठी है। उसी वातावरण में यह मुक्त बाघ मेरी ओर एक दृष्टि डालकर मंद-मंथर गति से चला जा रहा है। उसकी गति में शान है, वैभव है।

जीजाजी, गांव के गूजर तथा जंगलात महकमा के सिपाही से बातचीत कर रहे हैं। उनका कहना है कि यह बाघ आदमखोर बाघ के धोखे में हाथ आ गया है, पर अब हुक्म है कि इसको जयपुर के जू के लिए रख लिया जाय। वे लोग गाड़ी आदि की प्रतीक्षा में हैं। जिस पर इसे ले जाया जायेगा। साथ ही वे आदमखोर बाघ के आतंक के विषय में भी सतर्क कर रहे हैं। इस इलाके में उसने कई वारदातें की हैं और लोग शंकित हैं। वह चालाक भी बहुत है उसी से जाल में नहीं आ रहा है। साधारण बाघ आदमी पर चोट नहीं करता, वह उससे सदा बचने की कोशिश करता है। जब तक कि दांव में न आ जाए। जंगल के क्षेत्रों में लोग बातचीत करते, उफ आदि बजाते हुए तथा आग जलाकर निर्द्वन्द्व घूमते रहते हैं। परंतु एक बार यदि किसी बाघ को आदमी के नमकीन खून का स्वाद लग गया, तब वह जानबूझकर आक्रमण करता है, पीछा भी करता है, इन किस्सों से काफी आतंकित होकर, हम लोग वैराठ नगर के अपने ठहरने के स्थान तक पैदल ही जाते हैं।

स्थान तक पहुंचते-पहुंचते संध्या घिर चुकी है और अंधेरा छाने लगा है। हमारा ठहरने का स्थान ऊंची जगह पर है। शायद कोई सरकारी घर है। लम्बे बरामदे में दो कमरे हमको मिले हैं। एक में जीजा तथा मैं और दूसरे में टाइप बाबू, मथुरा प्रसाद और रामसिंह। अन्य चपरासियों तथा फर्राशों ने बाहर के बरामदे में डेरा डाल लिया है। सब ने मिलकर कुछ ही देर में सारी व्यवस्था कर ली। जीजा जी, तहसीलदार, कानूनगो आदि से घिर गये हैं।

जिनका इन दिनों मुआयना किया जाना है। इन सबकी बातों में "जी सरकार" तथा "हुकुम" से अधिक मैं सुन नहीं पा रहा हूं। वास्तव में समझ नहीं रहा हूं, क्योंकि मेरा मन इस स्थान को चारों ओर से देख समझ लेने की ओर अधिक है। मैं कपड़े आदि मथुरा प्रसाद की सहायता से ठीक कर रहा हूं, बिस्तर भी लगवाना है। ठंडक बढ़ रही है। जीजाजी ने तीन पुलोवरों के ऊपर जब बण्डी पहन ली और कनटोप लगा लिया तो मेरी हंसी नहीं रूक पा रही है। मैं नहीं समझ रहा हूं कि ये इस प्रकार बाहर भी कपड़े पहनते होंगे। लेकिन मेरी ही कमअक्ली है, क्योंकि यहां तो घर से जाड़ा अधिक ही है। बरामदे में मेज कुर्सी का प्रबंध है और जीजाजी का दरबार वहीं लग गया है। मैं समझता हूं कि उनकी बातचीत का प्रधान विषय आगामी दिनों का मुआयना होगा। फिर कान में जो भनक पड़ रही है, उससे तो यही अनुमान लगता है कि चर्चा के मुख्य विषय हैं—यहां शिकार क्या मिलते हैं। मुर्ग-मुसल्लम के वजन पर बटेर-मुसल्लम यहां सुविधापूर्वक तैयार किया जा सकता है। कस्बे में एक प्रसिद्ध ज्योतिषि है जिनसे साहब को मिलकर जरूर खुशी होगी। यहां रामचंद्र वीर के पिता और बाबा रहते हैं। उनका घर इसी कस्बे में है, पर बाबा सामने की पहाड़ी श्रेणी की ऊंची वाली चोटी पर हनुमान मंदिर में रहते हैं, उसकी स्थापना भी उन्होंने ही की है। मैं कमरे में सोचता हूं कि बातचीत नीरस तो नहीं जान पड़ती है, इसमें कल के मुआयने की तो कोई गंध नहीं है, पर मुझे बाहर निकल कर चारों ओर की बिखरी हुई पहाड़ियों का निरीक्षण करने का अधिक आकर्षण घेर रहा है।

रात अंधेरी है। दिसंबर महीने की घिरती हुई रात में ठंडक सिमटती आ रही है। मैंने कोट-पैंट पहन लिया, ऊपर से मफलर भी लगा लिया है, और बाहर निकलने के लिये तैयार हूं। खाना बन रहा है और मथुरा प्रसाद तथा ड्राइवर उसमें व्यस्त हैं जब तक खाना बनता है, आसानी से घूम आया जा सकता है। जीजाजी की जानकारी में जाने से बनेगा नहीं, वह रोक ही लेंगे। अकेले निकलने में अन्दर से मुझे भी कुछ आतंक लग रहा है। मियां कादर को लिया जा सकता है, पर उसको बात करने का रोग है, और मैं चाहता हूं एकांत में प्रकृति के बीच अपने को डूबने दूं। जीजाजी से बचकर निकल आया हूं, वह बात-चीत में उलझे हुए हैं। कादर मियां को साथ लेना पड़ा है......"जो हुकुम कुंवर साहब।" कहकर वह साथ हो लिया। पर साथ ही कहने जा रहा है : "इधर कुंवर साहब, जंगलात का मामला है। बाहर घूमना खतरे से खाली नहीं है। बस्ती के पास ऐसी बात नहीं है, लेकिन खतरे से इंसान को दूर रहना चाहिए।" मैं समझ रहा हूं कादर मियां को बाघ की मासल पुष्ट चमकती हुई

देह अब भी घेरे हुए है। मैं आश्वासन देता हूं...डरने की बात नहीं है, कादर मियां, तुम तो साथ हो ही और हम उस टीले से आगे जाएंगे नहीं। कादर मियां के अंदर का साहब बोल उठता है, "कुंवर साहब, ऐसी खास बात नहीं है। मैं तो बहुत घूमा–फिरा हूं। मेरे लिए डर की बात नहीं है। मेरा सामना कई बार जंगलों में शेर से हो गया है। कुंवर साहब उन दिनों में हुजूर के पास ऊंट-सवार था। एक बार......" फिर कादर मियां अपने किस्सों में (शायद मनगढ़ंत) बह जाता है। उनको कब किस जंगल या घाटी में बाघ की आहट मिली और उन्होंने अपने ऊंट को बढ़ाया। बाघ ने कितनी दूर ऊंट का पीछा किया, पर बाद में हार कर लौट गया। किसी प्रकार सामने के मोड़ से बाघ निकल आया और उसका ऊंट ठिठककर खड़ा हो गया। बाघ ने तिरछी गरदन किए हुए उसको देखा और दूसरी ओर चला गया। किस प्रकार उसका एक नया सांडिया झाड़ियों में आहट पा कर भाग निकला, तो उसके रोकते रहने पर भी एक मील बाद ही रुका। बाघ के किस्सों से कादर मियां जो बहके तो राजस्थान के डाकुओ के किस्सो में उलझे रहते हैं। उनमे कैसे और कहां उनकी भेंट हो गई और किस प्रकार उनसे मियांजी ने छुटकारा पाया। एक बार तो उनकी ऊंटनी का चार सांड़ियों ने पीछा किया, पर वह भी सरकारी डाक की सवारी थी कि भागती ही चली गयी। उसको पाना आसान नहीं था। डाकुओं के विषय में कादर मियां के मन में वीर-भाव और आदर ही छुपा है। उनका कहना है कि राजस्थान के डाकू बचन के पक्के होते हैं और उनके जैसे गरीबों को नुक-सान नहीं पहुंचाते हैं। एक-दो बार तो रास्ता भूल जाने पर डाकुओं ने उनका मार्ग प्रदर्शन तक किया।

उनके रोचक किस्सों में उलझा हुआ भी मैं अपने में घिरा हुआ हूं। मैं कस्बे के निकटवर्ती खुले स्थान पर आ गया हूं। और चारों ओर के विस्तार को एक दृष्टि से देखकर उसमें फैलना चाहता हूं। आकाश साफ है, तारे चमक रहे हैं पर ठण्डक जैसे हवा की तरंगों में चारों ओर सारे वातावरण को ठिठुरे दे रही है। शीत के कारण आकाश की नीलिमा भी जैसे मैली हो गयी है और तारों की चमक भी फीकी-फीकी है।......धीरे धीरे कादर मियां से मैंने अपने को मुक्त कर लिया है। वह एक पत्थर के समतल और बड़े टीले पर बैठकर ऊंघ रहा है। अपनी सरकारी गरम शेरवानी में वह सिमिट गया है। और मैं इस 30-40 फीट ऊंचे टीले के सीमित विस्तार में संभल-संभल कर चहलकदमी कर रहा हूं। मेरे सामने पहाड़ी श्रेणी काली-काली छाया के रूप में फैलती हुई दाहिनी ओर मुड़ गयी हैं। और मेरे बांई ओर की पहाड़ी भी छायामयी आकृति में विशृंखल सी खड़ी है। उसमें विस्तार अधिक नहीं जान पड़ता।

दाहिनी ओर बैराठ कस्बे को स्पर्श करती हुई सड़क फैले हुए मैदान के विस्तार में चली गई है। चारों ओर के ऊंचे-नीचे पेड़ अपनी-अपनी छायाओं में जैसे सघन होकर नीरव, मौन हो गये हैं। मैं बहुत देर तक टहलता रहता हूं, अपने आपको इस वातावरण में बिखेरने का प्रयत्न करता हुआ। पर चतुर्दिक की प्रकृति ऐसी निरपेक्ष है कि ग्रहण ही नहीं कर रही है। वह मुझे अपरिचित समझ कर उदासीन है। ऐसा लगता है, शीत का अदृश्य पंजा सारे वातावरण को घेर चुका है। और धीरे-धीरे कसता जा रहा है। प्रकृति उसके कसाव का हल्का आभास पा रही है और उसी से आतंकित है। मैं यहां आया हूं कि अपने को खोल सकूं। मुक्त कर सकूं। पर यह कैसी सीमित है कि मेरा विस्तार बाहर से टकराकर पुन: अपने अंदर वापस आ जाता है। मैं इस वातावरण में बिखर नहीं पाऊंगा, मैं अपने से विश्राम नहीं पा सकूंगा। फिर मैं ऊंघते हुए कादर मियां को जगाकर अपने स्थान के नीचे चल पड़ा हूं। मन में सोचता हूं कि अच्छा आज तुमने अपरिचित मानकर मुझे स्वीकार करना नहीं चाहा है, पर कल मैं तुम्हारा परिचय प्राप्त करूंगा, स्नेह ग्रहण करूंगा।

यात्रा की थकान से कल रात गहरी नींद आई। सुबह नींद खुली तो देखता हूं पर्याप्त प्रकाश हो चला है। जीजाजी अभी सो रहे हैं। वे कल रात मेरी अपेक्षा देर तक बातचीत में उलझे रहे थे। लिहाफ से निकलने में साहस करना पड़ रहा है। पर अभी ऐसा प्रकाश भी नहीं हुआ है कि बिस्तर में कुछ पढा ही जा सके। अनुभव करता हूं कि मैं बैराठ नगर में हूं और वह प्राचीन इतिहास का नगर है। जिसके आस-पास पाण्डवों ने अपने अज्ञात-वास का वर्ष बिताया था। कल संध्या की याद आती है, चारों ओर की पहाड़ी छायाओं के विस्तार का स्मरण आता है। मैं समझना चाहता हूं कि क्या सचमुच यह ऐसा स्थान है, क्या सचमुच यह विराट की नगरी का ही ध्वंसावशेष है, जिस पर मैं रात में सोया हूं। मैं उठ जाता हूं मथुराप्रसाद को जगाकर साथ लेता हूं। मुझे नित्य क्रिया के लिए गांव के नीचे के मैदान में जाना अधिक सुविधाजनक लगता है। मेरा आज का यह निवास-स्थान एक प्रकार से बैराठ कस्बे के एक सिरे पर है। हम लोग छोटी सी पहाड़ी श्रेणी की तलहटी की ओर बढ़ रहे हैं। मथुरा अधिकतर चुप रहने वाला व्यक्ति है। वह व्यर्थ बात नहीं करता। काम-काज में होशियार है। इसी कारण जीजाजी का विश्वासपात्र है। पूछने पर "हुकुम" कह कर ही वह "हां" और "न" दोनों का उत्तर यथासम्भव दे देना चाहता है। प्रकाश फैलता जा रहा है। सूर्य की लालिमा बांई ओर की पहाड़ी के पार्श्व पर छाई हुई है, धूप निकलने में अभी आधे घण्टे से अधिक देर है। अब पहाड़ी श्रेणियां और मैदान का विस्तार दोनों ही अधिक व्यक्त

हो गए हैं। सामने की पहाड़ी की सब से ऊंची चोटी तीन बहुत विशाल पाषाण खण्डों पर संतुलित है और उसकी दोनों ओर श्रेणी नीची होती हुई फैली है, कुछ इस प्रकार कि उसके छोर घूम कर दूसरी ओर निकल गये जान पड़ते हैं। सारी पहाड़ी मझोले कद के पेड़ों से छाई हुई है। बीच-बीच में नग्न, विशाल पाषाण-खण्ड यत्र-तत्र उभर आए हैं। बांई ओर की पहाड़ी श्रेणी में विस्तार नहीं है। उसमें अधिकतर विशाल और नंगे पाषाण-खण्ड ही दिखाई दे रहे हैं। यह पहाड़ी अधिक सूखी और श्री विहीन जान पड़ती है।

पहाड़ी तलहटी चार फर्लांग के लगभग है, हमको घूमकर पहुंचने में भी 15 मिनट से अधिक नहीं लगते हैं। तलहटी के समीप असंख्य पत्थर के टुकड़े बिखरे हुए हैं, और चारों ओर छोटी-छोटी झाड़ियां फैली हुई हैं। जिनसे उलझने से बचकर हम दोनों आगे बढ़ रहे हैं। सामने ही पहाड़ी श्रेणी के अंदर की ओर वृत्त के रूप में एक उपत्यका है जो पहाड़ी पेड़ों से भरी हुई है। जाड़े के कारण सारे पेड़ पाले में सिकुड़े हुए खड़े हैं और उनकी हरियाली भी गहरा कर धूमिल पड़ गयी है। फिर भी चिड़ियों के नाना प्रकार के कलरव में उपत्यका जाग्रत लगती है, पेड़ भी हिलते हुए उमंगित जान पड़ते हैं। मुझे एकाएक स्मरण आता है, मैं अकेला नहीं हूं और मैं प्रातः भ्रमण के लिए भी निकला हूं। मथुरा प्रसाद को लौटकर हम लोगों की चाय की व्यवस्था में भी जुटना है और वह संकोच में कुछ कहेगा भी नहीं।

चाय का कार्यक्रम देर तक चलता रहा। तहसीलदार तथा नायब साहब आदि कई लोग मेरे साथ हैं। मेरे साथ होने के कारण उन लोगों में घूमने फिरने के लिए विशेष उत्साह है। परंतु इनकी बात-चीत के अंदर कहीं कुछ है जो इस सारे उत्साह को कृत्रिम बना देती है। आज दोपहर तक मुआयने का कार्यक्रम रहेगा और सांझ की चाय के बाद हम लोग बौद्ध-बिहार वाली पहाड़ी पर चलेंगे। वहां कभी पुरातत्व विभाग की ओर से खुदाई का कार्य हुआ था। इसी प्रकार कल शाम को हम लोग सामने वाली श्रेणी पर चलेंगे और शिखर के हनुमान मंदिर में दर्शन भी करेंगे। जीजाजी में दर्शन की भावना कम महत्वपूर्ण नहीं है। यह अनुमान इन अमलों को लग गया है और इसी कारण उन्होंने हनुमान जी के महत्व सम्बन्धी कुछ दृष्टांत भी दे डाले।......... अमुक व्यक्ति पहाड़ी के जंगलों में रास्ता भूल जाता है, अंधेरी रात में वह भटक जाता है। रात चढ़ती जा रही है और कस्बे का व्यक्ति घबराहट में रास्ता खोज निकालने में असमर्थ है। वह भयभीत है, आकुल है। वह शिखर के हनुमान का स्मरण करता है। जब वह भय से मूर्च्छित-सा होने

लगता है, तभी उसे लगता है उसके सामने दो पैर आगे बढ़ते जा रहे हैं और वह उन्हीं का अनुसरण करता हुआ कस्बे के मुख्य रास्ते तक आ जाता है। जब प्रकृतस्थ होकर वह आंखें ऊपर उठाकर देखता है तो आतंकित हो जाता है......सामने गदाधारी हैं।......फिर एक दूसरा दृष्टांत..........कहीं पहाड़ी घाटी में किसी व्यक्ति के सामने आकस्मिक रूप से बाघ प्रकट हो जाता है। वह बाघ के इतने सामने और निकट है कि रक्षा का कोई उपाय नहीं है। शिखर के हनुमान का स्मरण करता है। वह विभ्रम और आतंक की स्थिति में देखता है कि बाघ दुम हिलाता हुआ खड़ा रहता है और फिर मुड़कर पहाड़ी में अदृश्य हो जाता है। जब वह चैतन्य होता है, तो वह देखता है कि पहाड़ी मोड़ पर एक गदाधारी व्यक्ति अदृश्य हो रहा है।

इन कहानियों ने हमारी चाय की बैठक को जमा दिया है। मैं उनकी रोचकता से आकर्षित हूं और जीजाजी उनके अंदर निहित भाव से अभिभूत हैं। लेकिन फिर बातों का झुकाव दूसरी ओर मुड़ा। नायब जी शिकारी हैं और वे शिकार की चर्चा प्रारम्भ कर देते हैं। वह अलवर के स्वर्गीय महाराज के साहसपूर्ण शिकारों की कहानी सुनाते हैं। इस बताने में ऐसा लगता है जैसे उनके साहसिक कृत्यों में कुछ भाग नायब जी का भी हो।.........वे ओदी में बैठकर सुरक्षित शिकार को कायरता मानते थे। उनको प्रायः आमने-सामने शिकार खेलने का शौक था। यहां तक कि वे अपने शिकार को सतर्क करने तक पर विश्वास करते थे। जीजाजी को शिकार में विशेष रुचि नहीं है, इस संबंध में उनकी रुचि सदा विशेष पशु-पक्षियों के मांस की विवेचना की ओर मुड़ जाती है ऐसा ही हुआ। नायब जी ने कई शिकारों की डिशेज की दावत भी दे डाली। पर एक लाभ मेरा भी हुआ। परसों के लिए, इसी बातचीत में यह तय हो गया है कि हम लोग अलवर राज की जंगल वाली कोठी देखने जायेंगे और समय रहा तो भर्तृहरि की समाधि भी चलेंगे।

नौ बजे तक जीजाजी मुआयने पर निकल पाते हैं और उसके बाद मैं अकेला रह जाता हूं। इस अकेलेपन में उलझने के लिए साथ में किताबें हैं, पर प्रयत्न करने पर भी मन लगा नहीं। मेरे मन में बैराठ और उसका चतुर्दिक बसा हुआ है और जब से अलवर के सुंदर जंगलों के बीच में भर्तृहरि की समाधि तक चलने की बात हुई है, मेरे मन में भर्तृहरि का अद्भुत व्यक्तित्व उभर रहा है। भारतीय इतिहास के कुछ चरित्रों को कल्पना ने बड़े आकर्षक तथा भव्य रंग प्रदान किए हैं, और इन व्यक्तित्वों में ही विक्रमादित्य, उदयन, भोज, भर्तृहरि तथा गोरखनाथ जैसे नाम हैं। भर्तृहरि के जीवन में नीति, शृंगार और वैराग्य का ऐसा विचित्र संयोग किस प्रकार संघटित किया गया है। मैं सोचता हूं ..

वैराग्य के जनश्रुति द्वारा दिए गये कारण मन में करुण भावना की सृष्टि करते हैं नीति निपुण राजा जिसने श्रृंगार का वैभव और विलासपूर्ण जीवन मुक्त भाव से बिताया था, अंततः सब कुछ छोड़कर विरक्त बना। वह साधक बना और सिद्ध भी। बहका हुआ मन बैराठ लौटता है ....सोच रहा हूं यही राजा विराट की नगरी है। महाभारत काल में उसमें वैभव होगा, विलास होगा। यही पांचों पांडव, नाना वेशों में छिपकर एक वर्ष रहे थे और यही अर्जुन जैसे धनुर्धर को वृहन्नला का पार्ट अदा करना पड़ा था। अज्ञातवास के पाण्डवों के प्रति सहानुभूति जागती है। मन होता है कि उस पेड़ को ढूंढूं जिस पर अर्जुन ने अपना गाण्डीव छिपाया था, उस कंदरा को खोजूं जिसमें भीम ने अपना गदा छिपाया होगा।

मुआयना से लौटने में जीजाजी को विलंब हो गया। भोजन करते-करते तीन बज गये हैं। आज कल सांझ के झुक जाने में देर ही कितनी लगती है। पांच बजे के बाद ही सूरज पच्छिम की पहाड़ी श्रेणी के पीछे अदृश्य हो जाएगा। हम लोगों को जल्दी करना चाहिए। मैं डर रहा हूं कि जीजाजी काफी थक कर लौटे हैं, अलसा सकते हैं। पर घूमने के विषय में उनमें भी कम उत्साह नहीं है। विशेषकर जब मैं उनके साथ केवल इसी कारण आया हूं यह वह अनुभव करते हैं। मैं स्वयं कहता हूं फिर वह सहज भाव से मुस्करा-कर मजाक के स्वर में कहते हैं....... "और भई, तुम्हारी जीजी का भी तो डर है, कहेंगी भइया को तो ले गये थे, पर घुमाया दिखाया क्या।" मैं अनुभव करता हूं कि हमारे जीजा सरकारी अफसरी में भी मृदु और कोमल रह पाते हैं, उनकी सारी डांट फटकार उनके मन से नहीं निकलती।

बौद्ध बिहार की पहाड़ी के लिए हमारा सारा काफिला साथ हो लिया हम चार-पांच व्यक्ति साथ हैं और सब आगे-पीछे। मथुरा ने जोधपुर में पानी साथ ले लिया है। तहसीलदारजी ने बताया है कि वहां पानी नहीं है और चढ़ाई सीधी होने से प्यास भी लगती है। हम लोगों को उधर से ही जाना है, जहां कल पिंजरे में बंदी बाघ मिला था। आज वहां सूखी हुई टहनियों और डालियों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। बाघ को जयपुर ले जाने का प्रबंध हो चुका है। जंगल और पहाड़ों में स्वच्छंद विचरण करने वाला वह शक्ति का प्रतीक बाघ जयपुर के जू के कटघरों में कैसे रहेगा कैसा अनुभव करेगा। सड़क छोड़ कर हम पगडंडी से पहाड़ी की ओर बढ़ते हैं। मार्ग ऊबड़-खाबड़ और पथरीला है। सम्हल कर चलना पड़ रहा है। ज्यों-ज्यों पहाड़ी की ओर हम बढ रहे हैं। चारों ओर छोटे-बड़े पाषाण-खंड उभरें हुए हैं, जिनकी दरारों में झाड़ियां और कहीं-कहीं पेड़ भी उगे हुए हैं। दाहिनी ओर की पहाड़ी श्रेणी की चोटी पर जिस

प्रकार के तीन भूघराकार-पाषाण पर भी है। पर इस पहाड़ी को देखकर मन में कोई किसी प्रकार का आकर्षण नहीं जाग रहा है। लगता है सामने किसी पहाड़ी का मृत कंकाल खड़ा हो जो मन को आंतकित करता है।

हम सब पहाड़ी के पार्श्व से चढ़ाई प्रारम्भ करते हैं। रास्ता काफी खराब है, एक प्रकार से रास्ता उसे नहीं कहा जा सकता। कभी पत्थरों को इधर-उधर जमा कर, हटाकर उसमें आने-जाने लायक मार्ग निकाला जरूर गया होगा, लेकिन अब पत्थर हट बिखर कर अस्त-व्यस्त हो गये हैं। साथ के तहसीलदार जी भारी शरीर के हैं, हांफ गये हैं। फिर भी जैसे साथ चलने के लिए विवश हों। नायब जी बतला रहे हैं कि किसी समय पुरातत्व विभाग के लोगों ने इस जगह की सर्वे आदि कराई थी। खुदाई भी की गई पर उनको विशेष संतोष नहीं हुआ। महाभारत काल के कोई अवशेष नहीं मिल सके। सचमुच इस सूखी पहाड़ी के सीधे ढाल पर चढ़ना बहुत आसान नहीं है। जाड़े में भी पसीना आ गया है, प्यास लग आई है। ज्यों-ज्यों हम ऊपर बढ़ रहे हैं, बैराठ का छोटा सा कस्बा और उसके चारों ओर का क्षेत्र स्पष्ट हो जाता है। कस्बे के पास से जाने वाली सड़क आगे खुले हुए विस्तार में बढ़ती हुई बहुत दूर जाकर जंगलों में डूब जाती है। जीजाजी ने बतलाया कि ये दूर के जंगल अलवर राज्य में पड़ते हैं। अब हम चोटी पर पहुंचने ही वाले हैं। सामने की पहाड़ी श्रेणी यहां से किंचित वृत्तांश में फैली हुई पहाड़ी मात्र जान पड़ती है। तिरछी पड़ने के कारण इसके दूसरी ओर के जंगल और एक दो गांव भी दिखाई दे रहे हैं।

अब हम चोटी पर हैं। यहां से पहाड़ी की नग्नता और सूखेपन का भान नहीं होता है। चारों ओर हरी-भरी पहाड़ियां अथवा जंगल दिखाई देते हैं। यहां के मैदान भी रेतीले नहीं हैं, उनमें जाड़ों की फसलों के खेत फैले हुए हैं। चोटी पर अधिक विस्तार नहीं है। पर इस छोटी-सी जगह में खुदाई से एक बौद्ध-बिहार का नक्शा उभर आया है। स्तूप का चिन्ह स्पष्ट है। भिक्षुओं के आवास की कोठरियों की नावें साफ दिखाई देती हैं। स्तूप के पास ही सभा का प्रकोष्ठ होगा, ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है। मैं अब तक सारनाथ देख चुका हूं। उसके सामने इस बिहार की क्या हस्ती है। पर सोचता हूं उस युग की बात, बौद्ध बिहार ऐसे एकान्त और दुर्गम स्थानों में बनाए गए होंगे। बड़े-बड़े नगरों के समीप उनकी स्थिति इस बात की सूचक है कि एक युग था जब बौद्ध भिक्षुओं का राजन्य वर्ग में बड़ा सम्मान था। पर यह ऐसा कब हुआ, जब उन बिहारों को एकांत और दुर्गम स्थानों पर शरण लेना पड़ा। सुनते हैं, अजन्ता, ऐलरा की गुफाओं में बहुत विशाल विहार अदृश्य से युगों स्पंदित रहे। लेकिन इस पहाड़ी पर यह बौद्ध-बिहार किस उद्देश्य से स्थापित किया गया होगा।

किसने की होगी इसकी स्थापना। पर हो सकता है, उस युग में बैराठ नगर हो, किसी राज्य का केन्द्र, किसी वैभवशाली राजा की राजधानी।

अन्य लोगों का ध्यान बौद्ध-भिक्षुओं के आवास की कोठरियों के आकार पर जाता है। कितनी छोटी है, कैसे रहते होंगे, ऐसा भी नहीं लगता इनमें कोई खिड़की आदि की व्यवस्था की गयी हो। मेरा ध्यान इस ओर अधिक नहीं गया। सारनाथ में यह देख चुका हूं, मन में कौतूहल भी हो चुका है। ...अब तक संध्या हो चली है। सूरज धीरे-धीरे सीमांत की ओर खिसकता जा रहा है। कस्बे की ओर की छायाएं बढ़ती जा रही हैं। हमारे ऊपर अब भी धूप की किरणें हैं.......बहुत हल्की, बहुत कोमल। लगता है ये किरणें रूई जैसी, बर्फ के समान गलती जा रही हैं। मिटती जा रही हैं। वैसे यहां देखने को है ही क्या सभी साथियों को लग रहा है, जैसे यहां आकर मिला क्या। नायब जी का भाव जरूर है कि कुछ भी न हो, तो भी दिल्ली की गोरी सरकार ने यहां खुदाई की है, इसका इसलिए महत्व तो मानना ही होगा। जीजाजी जरूर रुचि ले रहे हैं वह इतिहास के विद्यार्थी रहे हैं, दूसरे मेरे मन को भी घेरना चाहते हैं।

पर मैं संतुष्ट हूं, यहां आकर प्रसन्न हूं। इसलिए नहीं कि सैकड़ों बौद्ध-बिहारों में से एक सा भग्नावशेष मेरे सामने बिखरा पड़ा है और मैं उसे देख रहा हूं। मुझे लगता है कि मैं किसी अतीत युग से सम्बद्ध हो गया हूं। मैं आज हूं और वह युग बीत गया है, इस रूप में नहीं। ऐसा भी नहीं कि मैं सैकड़ों वर्षों पूर्व के उस युग में अपने युग से हट कर पहुंच गया हूं, आभास होता है मैं उस युग से आज की अपनी मनः स्थिति के साथ काल-प्रवाह की चेतना में जुड़ गया हूं। मेरे मन से वर्तमान और अतीत का व्यवधान कुछ क्षणों के लिए हट गया है। लग रहा है, सब जैसा का तैसा है। बौद्ध बिहार खड़ा है। मुण्डित मस्तक लम्बे चीर धारण किए बौद्ध-भिक्षु स्तूप के सम्मुख के खम्भों वाले सभा मण्डप में एकत्रित हो रहे हैं। एक ओर हम सब नागरिक भी हैं। और मुझे लगता है कि मैं साफ सुन रहा हूं—बुद्धं शरणं गच्छामि, धरमं शरणं गच्छामि, संघ शरणं गच्छामि का स्वर गूंजता हुआ चारों ओर वातावरण में फैल रहा है। और मैं घिरती हुई संध्या-वेला में इसी संवेदना से तृप्त हूं।

बौद्ध-बिहार शिखर से वापस आते समय संध्या उतरती आ रही है, सघन होती जा रही है। दूर के फैले हुए जंगल, सामने की पहाड़ी श्रेणी छायाकार ग्रहण कर रहे हैं। कस्बे के छोटे-बड़े जैसे घर सिमट रहे हैं। मैदान के ऊंचे पेड़ अपनी-अपनी टहनियों-पत्तियों के जाल में उलझते जा रहे हैं। हमारी पार्टी बातचीत करती कई टुकड़ियों में सम्हल-सम्हल कर उतर रही है। जीजाजी

तहसीलदार जी तथा नायब जी के साथ कल के मुआयने-मुकदमे का कार्यक्रम निश्चित कर रहे हैं। स्टेनो, पेशकार आदि कुछ आफिस की टैक्नीकल चर्चाओं में व्यस्त हैं। चपरासियों आदि की चर्चाएं मैं सुन नहीं पा रहा हूं....... इन सब आदमियों के बीच में मैं अकेला हूं किसी चर्चा में मैं खप नहीं पाता हूं, उनमें मेरा स्थान नहीं है, इस समय मेरे लिए यही उपाय है कि चारों ओर के विस्तार में डैने पसारे उतरती हुई संध्या के साथ मैं भी मैदान पर, जंगलों में पहाड़ी श्रेणियों पर बिखर जाऊं।

नायब जी कहते हैं कि मेरे जीजाजी की ज्योतिष में रुचि है और उसी रुचि को पकड़कर उन्होंने इस कस्बे के किसी योग्य ज्योतिषी की चर्चा की है। रात में बरामदे में जब भोजन के पहले की बैठक जमी, तब वह वृद्ध पंडित जी पधारे। जीजाजी ने उनका उचित स्वागत किया। जीजाजी ने ज्योतिष का अपने ढंग से कुछ अध्ययन-अभ्यास किया है और उनको शुद्ध चर्चा में भी रस आता है। फिर पंडित जी से ग्रहों के स्थान, उनको शुभाशुभ लग्नस्थान, भाग्य-स्थान, दृष्टि आदि पर चर्चा चलती रही। सामने बैठे रहने पर भी मैं इस बातचीत में न रस ले पा रहा हूं और न कुछ ग्रहण कर पा रहा हूं। केवल इतना सुन रहा हूं कि अमुक ग्रह अपने घर में है, अमुक को देख रहा है। अमुक की दृष्टि शुभ है, अमुक मारकेश है, पर अमुक स्थान पर प्रभाव न केवल नष्ट हो गया है वरन् भाग्य को बलवान भी बना रहा है। मुझे यह सब विचित्र लग रहा है, आकाश के ग्रहों की स्थितियां मनुष्य के भविष्य को इतना शासित कर रही हैं, यह कैसी बात है। मेरे मन का मानव विद्रोह करता है, वह युग-युग के इतिहास में किन ग्रहों को मानकर आगे बढ़ा है। फिर यह क्या है। यह वृद्ध पलित-केश किस आंतरिक विश्वास से ग्रहों की चालों की व्याख्या कर रहा है। जान पड़ता है कि उनके माध्यम से अदृश्य ने मनुष्य के जीवन को शासित और नियंत्रित कर रखा है और यह वृद्ध ज्योतिषी अपनी भाषा में निर्लिप्त भाव से इस भाग्य-लेख को पढ़ता जा रहा है। मैं समझता हूं। मनुष्य वहां अपने को अशक्त समझता है, अपने को विवश पाता है, किसी शक्ति से संचालित होते पाता है और इसी कारण अपने अदृश्य को समझने के लिये सहारा ढूंढता आया है ग्रह नक्षत्रों की चालों में कुछ पढ़ने का प्रयत्न करता आया है। इस बातचीत से मैं अधिक कुछ ग्रहण न भी कर सका होऊं, पर इतना स्पष्ट है कि जीजाजी को इस गांव ज्योतिषी ने प्रभावित किया है। आश्चर्य नहीं कि उनके परिवार की सारी कुण्डलियों के भाग्यफल बनाने का उन्हें काम मिल जाय और वृद्ध की दृष्टि से यह लाभ की बात होगी।

दूसरे दिन मध्याह्न तक का कार्यक्रम एकरस रहता है। जीजाजी, अपने स्टाफ के साथ मुआयने पर चले गए हैं और मैं मथुरा प्रसाद के साथ डेरे पर हूं। वह खाने की तैयारी में व्यस्त है, मैं लगभग अकेला हूं। करने के लिए कुछ भी नहीं है, पुस्तकों में मन कुछ देर उलझ सका, डायरी में कुछ समय लग सका है। फिर मन खाली है। खालीपन में अधिक बोझा है, अतः कुछ सोचना चाहता हूं। इधर बहुत दिनों से घर का कोई समाचार नहीं मिला है। पर मेरा अपना वह घर कहां है कह सकते हैं कई जगहों में बिखरा हुआ, कई भाइयों के पास। मेरे बिखरे हुए इस घर का केन्द्र कहां है। मुझे अनुभव होता है मेरे घर का कोई केन्द्र नहीं है, मेरा अपना भी कोई केन्द्र नहीं है। अम्मा-लाला के अभाव में वह केन्द्र विलीन हो गया है और यही कारण है कि सारी सीमाएं और परिधियां घेरकर भी मुझे न कोई दिशा दे पाती हैं और न मेरे लिए कोई वृत्त बना पाती हैं।

आज मध्याह्न के भोजन के बाद महावीर शिखर वाली पहाड़ी पर जाने का कार्यक्रम है। आज भी सैर में सभी को अधिक उत्साह है। मुझे भी यह पहाड़ी अपनी हरियाली और वृत्तांश शृंखला के कारण अधिक आकर्षक लग रही है। आज हम लोगों के साथ नायब जी तथा कानूनगो जी हैं। नायब जी के साथ बंदूक भी है। उनको बटेर के मुसल्लम की डिश की दावत की याद है। जीजाजी ने चलते समय कहा भी... "अरे नायब जी, वह आपकी बटेर के मुसल्लम का क्या हुआ।" नायब जी ने कहा : "जो हुकुम"। हुजूर आज ही तैयार होगी।" मेरा शाकाहारी मन न इस बातचीत में कुछ रस ले सका और न साथ की बंदूक से प्रसन्न हो सका। हम कस्बे का किंचित चक्कर लगाकर पहाड़ी श्रेणी की तलहटी में पहुंच गए हैं। इत्तफाक से हमको जहां से चढ़ाई प्रारंभ करना है, वहीं कल वाली उपत्यका है। पहाड़ी श्रेणी यहां किंचित वृत्त लेकर उपत्यका में गहरी हो गयी है। उपत्यका में छोटे वृक्षों तथा झाड़ियों की सघनता कम है। चारों ओर मटमैली हरियाली है। मेरा मन उसको देखकर उल्लसित हुआ। चढ़ते-चढ़ते उसका दृश्य और भी मनोरम हो गया है। जीजाजी के साथ नायबजी और कानूनगो जी पीछे है। मैं कस्बे के एक सम्भ्रांत सज्जन के साथ आगे बढ़ रहा हूं। पीछे के लोग अभी किसी मोड़ पर अदृश्य हैं। इतने में धांय की आवाज होती है और सारे वातावरण को चीरती हुई निकल जाती है। मैं चौंकता हूं। धांय का शब्द जैसे गहरी लकीर बनाता हुआ बिखर जाता है। अनुमान लगाता हूं, नायब जी ने शिकार किया है, उनकी गोली का शिकार कोई बटेर हुई होगी। सारी उपत्यका की शांति भंग हो गयी, टांऊ-टांऊ करते हुए अनेक पक्षी उड़ चले। पर एक बटेर उपत्यका में मंडराता

रहा है। फिर भी छोड़ कर उड़ नहीं जाता, वह लगातार टांऊ-टांऊ करता हुआ चक्कर काट रहा है।

कुछ ही समय में जीजाजी तथा और लोग आ जाते है। बातचीत से मालूम होता है कि बटेर के जोड़े में से एक गोली का निशाना बना है, और दूसरा बटेर टांऊ-टांऊ करता उपत्यका पर मंडराता रहा है। कहीं बैठता भी नहीं कि उसका भी निशाना साधा जा सके। कानूनगो ने तो एक आदमी को बटेर देकर भिजवाया है, मुसल्लम तैयार करने के लिए। मेरा मन इन सारी चर्चाओं से न जाने कैसा-कैसा हो रहा है। टांऊ-टांऊ करते हुए बटेर का स्वर मेरे मन में ही गूंज रहा है, मथ रहा है। मैं सोचता हूं मुझमें शक्ति होती, प्रतिभा होती तो, मेरे मन की करुणा भी "मा निषाद" जैसे किसी श्लोक के माध्यम से अभिव्यक्ति ग्रहण करती। पर कहां वाल्मीकि और कहां मैं। आदि कवि की कल्पना में वह करुणा सम्पूर्ण राष्ट्र के जीवन को अपने महाकाव्य में स्पंदित कर सकी और मैं अपनी क्षुद्र करुणा से स्वयं ही संवेदित हो रहा हूं। चढ़ाई में हम घूमकर दूसरी ओर आ गये हैं, उपत्यका और बैराठ नगर दूसरी ओर हो गए हैं। यहां से पहाड़ी श्रेणी के उस पार का दृश्य गोचर होता है। जंगलों की हरियाली, बीच में कहीं-कहीं गांव। हम ऊपर की ओर बढ़ते जा रहे हैं और पहाड़ी श्रेणी का चक्कर भी लगा रहे हैं। एक स्थल पर हम पहुंचते हैं, जहां से कहा जाता है कि दूसरी ओर जाने का मार्ग नीचे की ओर उतरा है।

यहां से साथ के लोगों की बातचीत का रुख एक नई दिशा में मुड़ जाता है। बताया जा रहा है, अभी पंद्रह दिन भी नहीं हुए यहीं पास ही एक आदम खोर बाघ ने एक बिल्कुल नौजवान थानेदार का घात किया है। यही घटना आतंककारी है। इसमें मार्मिकता भी है। नौजवान थानेदार अभी हाल में यहां आया था। घर पर उसके साथ नवविवाहिता पत्नी भी थी। वह किसी मुआयने के सिलसिले में उस दिन श्रेणी के पार गांव में गया था। साथ में सिपाही आदि भी थे। लौटते समय थानेदार ने अपना घोड़ा कुछ तेज कर लिया और सबसे आगे हो गया। अन्य लोग पीछे बातचीत करते हुए पैदल आ रहे थे, रास्ते में घोड़े का पीछा बाघ छिपे-छिपे कर रहा था। पर घुड़सवार को इस चुपचाप पीछे लगी आने वाली मौत की पदचाप की बिल्कुल खबर नहीं थी, वह अपने आप में डूबा हुआ चला जा रहा था। बाघ ने मौका पाकर घोड़े का एक पिछला पैर दाबा, पर घोड़ा बिजली की तेजी से झपट कर सरपट भागा। सवार निश्चित और ढीला बैठा था, झटका खाकर वह घोड़े से गिर पड़ा। पर गिरते समय रकाब में पैर उलझ गया और वह कुछ दूर सिर के बल घिसटा। वह गिरा और बेहोश हो चुका था, फिर भी बाघ उसको छोड़ कर

घोड़े का ही पीछा करता रहा। पर जब वह निकल गया तो वह फिर लौटकर थानेदार पर आया। ऐसा नहीं कि पीछे की भीड़ को इन घटनाओं में किसी का आभास ही नहीं मिला, और यदि उनमें इंसानियत होती तो वे शोर मचाकर बाघ को घबड़ा कर भगा भी सकते थे। बाघ भीड़-शोर से घबराता है लेकिन उनकी कायरता कि वे सब दूसरे रास्ते से चक्कर लगा कर लौटे।... थानेदार की लाश बाद में जंगलात के लोगों ने प्राप्त की। उनके इंसपेक्टर को जब खबर मिली तो वह अपने साथियों को लेकर वहां ढोल तथा मशाल के साथ पहुंचा। बाघ की चतुराई तो देखो, उसने आधी लाश खाकर उसका आधा भाग पत्थरों के नीचे छिपा दिया था।

यह कथा अपने आप में अत्यंत करुण और मार्मिक है। कथा के प्रसंग में मुझे कई बार थानेदार की नवविवाहिता वधू की याद आती है। फिर मेरे मन में न जाने कैसी अनुगुंजन होती है। लगता है मेरे पर कि किसी उपत्यका में टांऊ-टांऊ का स्वर करता हुआ कोई पक्षी करुण भाव से मंडरा रहा है। अब हम लोग उन तीन विशाल पाषाण-खण्डों के पास से निकल रहे हैं, जिन पर ऊपर शिखर थमा हुआ है। ये पाषाण इतने विशाल होकर भी सम्पूर्ण हैं। लगता है कि किसी ने इन्हें जमा कर रख भर दिया है। किसी ने कहा कि भीम इन्हीं पत्थरों को गेंद के समान इस पहाड़ी पर से उस पहाड़ी और उस पहाड़ी से इस पहाड़ी पर फेंका करते थे। भीम की कल्पना के साथ इस कथा का सामंजस्य है। अब हम इन विशाल पाषाणों के ऊपर ही चढ़ रहे हैं। चढ़ाई अधिक ढालू और खतरनाक है। रास्ता चक्कर लगाता हुआ ऊपर उठ रहा है। कुछ देर में हम चोटी पर हनुमान मंदिर में पहुंच जाएंगे। लगभग हजार सवा हजार फुट की ऊंचाई से हम नीचे के कस्बे, मैदान और दूर के जंगलों को देख रहे हैं। लगता है जंगल में कहीं-कहीं पेड़ एकत्र होकर भीड़ लगाए खड़े हैं। कहीं कतार बांध दूर तक चले गए हैं। किसी स्थान का घेरा डाले हुए हैं और बहुत दूर क्षितिज पर अन्य पहाड़ियों की शृंखलाएं बादलों सी दिखाई दे रही हैं।

चोटी पर हम सब पहुंच गए हैं। यहां छोटा सा चौरस स्थान है, उसी में एक हनुमान मंदिर बना हुआ है। एक ओर कुछ पेड़ लगे हुए हैं। मंदिर के द्वार पर ही सफेद दाढ़ी-मूंछों वाले बाबा जी मिल गए, जो रामचन्द्र वीर के बाबा हैं। हम सब उनको प्रणाम करते हैं, और वह हाथ उठा कर आशीर्वाद देते हैं। मंदिर के अंदर हनुमान जी की मूर्ति स्थापित है। हम सब उनके दर्शन करते हैं। प्रसाद चढ़ाया जाता है। बाबाजी ने लगभग सभी प्रसाद हमको पुनः वापस कर दिया है। ऊपर चढ़ने के श्रम से हम थक चुके हैं और भूख भी लग

आई है। सभी थोड़ा-थोड़ा प्रसाद ग्रहण कर पानी पीते हैं। बाबाजी ने पानी पिलाया। वह बतलाते हैं कि उनके लिए नित्य कुछ घड़े पानी नीचे कस्बे से यहां लाया जाता है। यहां उन्होंने अपनी साधना का स्थान चुन लिया है, मंदिर एक प्रतीक है। यहां उनको कम लोग बाधा पहुंचाने आते हैं। प्रायः रात में वह नीचे चले जाते हैं उनको आते-जाते कभी बाघ का भय नहीं लगता। हनुमान् जी की कृपा से वह निर्भीक है। कई बार ऐसा हुआ कि अगले मोड़ पर उनको बाघ दिखाई दिया है, पर उनके खड़ाऊं की आवाज से वह उसी समय अदृश्य हो गया है। उनकी बातों से ऐसा नहीं लगता कि वह असत्य कह सकते हैं। मैं चोटी के सीमित विस्तार के प्रत्येक स्थल से नीचे के दृश्य को देख लेना चाहता हूं। यहां से इस श्रेणी का विस्तार, जैसे संकुचित हो गया है। सामने की बौद्ध विहार वाली पहाड़ी है। उसके विशाल पाषाण खण्ड जरूर व्यक्त होकर चमक रहे हैं। कस्बे के घर सिमट कर छोटे हो गए हैं। मानो श्रेणी के पार्श्व में चिपक रहे हैं। दूसरी ओर के विस्तार में जंगलों की रेखाओं में कहीं सघन और कहीं विरल प्रसार है। एक दो गांवों का आभास दाहिणी ओर की मैदान में खेतों के साथ मिलता है। सबका कहना है यहां बहुत विलंब नहीं करना चाहिए। आदमखोर बाघ का भय है। बाबाजी ने तथा बंदूकधारी नायब जी ने अपने-अपने भाव से हमको आश्वस्त किया। बाबाजी ने कहा कि इतनी भीड़-भाड़ और आवाजों से बाघ स्वयं भयभीत होता है। उन्होंने अपने अनुभव से बताया कि किस प्रकार कई बार अपनी ललकार से उन्होंने बाघ को जानवरों पर आक्रमण करने से रोका ही नहीं वरन् भगा तक दिया है। नायब जी ने अपनी बंदूक का भरोसा दिलाया, यद्यपि चिड़िया मारने वाले इन महोदय पर मेरा विश्वास किंचित भी नहीं जमता है। फिर हम लोग बाबा जी के साथ वापस लौटे। बाबाजी खड़ाऊं पहन कर इस तीखे उतार वाले रास्ते पर आसानी से उतर रहे हैं। मुझे आश्चर्य होता है। वह सचमुच उन्होंने बहुत अच्छा स्थान चुना है। मार्ग में जीजाजी भक्ति भाव से उनसे बातचीत कर रहे हैं। सब लोग आगे पीछे चल रहे हैं। मैं सबको साथ लेकर भी सबसे अलग हूं। मुझे पहाड़ी का विशृंखल सौंदर्य अपनी ओर खींच रहा है। मेरा मन दूर तक फैले हुए जंगलों की रेखाओं पर भी दौड़ना चाहता है। धीरे-धीरे सारा दृश्य खिचती हुई छाया के अंदर घिर रहा है। हम फिर उसी उपत्यका के ऊपर होते हुए उतर रहे हैं और वही आवाज अब भी सुनाई दे रही है टांऊ-टांऊ। उपत्यका के धुंधले होते प्रकाश में वही आवाज करुण भाव से अब भी मंडरा रही है। किसी का भी ध्यान नहीं जाता है, मेरा मन करुणा और अवसाद के भूख से उमड़ता है, फिर उदास हो जाता है।

फिर आज रात का खाना मैं नहीं खा सका। भोजन की मेज पर बैठा हूं। मेरी निरामिष भोजन की थाली मेरे सामने है। सामने जीजाजी हैं, उनके सामने की डिशेज में एक बटेर मुसल्लम भी होगी। मैं कल्पना करता हूं सामने भोजन की थालियों की डिसेज के प्रति अनासक्त हूं। पर मेरे मन में कोई उपत्यका है जिसमें कोई पक्षी टांऊ-टांऊ करता हुआ मंडरा रहा है और सारा मन उस करूण स्वर से भर गया है। मुझे भूख नहीं है। आग्रह करने पर भी मैं कुछ खा नहीं पाता हूं, और कारण बताना आसान नहीं है। मैं कैसे कहूं कि "मा निषाद" कहकर मैं किसे शाप देना चाहता हूं। और किस भाव को या पीड़ा को वार्णी देना चाहता हूं।

दूसरे दिन जीजा जी का कार्यक्रम केवल दो-तीन घंटे का है। उन्होंने उसे 12 बजे के पहले ही समाप्त कर लिया है। आज का दोपहर का भोजन जल्दी होगा। और फिर अलवर की जंगलात कोठी तथा भर्तृहरि की समाधि का कार्यक्रम रहेगा। मेरा मन सुबह से उल्लसित हो जाता है। दोपहर तक किसी प्रकार डायरी लिखने में कुछ पुस्तकें उलटने में समय बिताता हूं···अंततः हम लोग मोटर पर यात्रा शुरू करते हैं। साथ में ड्राइवर रामसिंह के अतिरिक्त मथुरा प्रसाद है और नायब जी। जीजाजी तथा मैं आगे हूं। सामने से दृश्य अच्छा मिलता है। नायब जी अलवर की कोठी की प्रशंसा करते हैं। स्वर्गीय महाराज अलवर के शिकार प्रेम की चर्चा भी करते हैं। यह हम पहले भी सुन चुके हैं। आज राजस्थान में लगता है दो ही चर्चाएं प्रधान हो उठी हैं। बाघ और महाराजों के बाघ के शिकार के किस्से अथवा साहसी डाकुओं के किस्से। युद्ध भूमि में निःशंक मृत्युवरण करने वाले वीरों के देश में केवल साहसिकता प्रशंसनीय वस्तु रह गई है। मन अनेक बार खिन्न होता है। पर वर्णन करने वाले के मन को रखना पड़ता है और इस साहसिकता की प्रशंसा भी करनी पड़ती है। पर कथाकार क्या समझ सकता है कि यह प्रशंसा उसकी शैली की अधिक है।

दो-तीन मील बाद ही तारकोल की काली सड़क पर एक सफेद अवरोध सा दिखाई दिया। नायब जी ने बताया यहां से अलवर का राज्य प्रारंभ होता है। और वास्तव में यहां से अलवर के जंगलों का क्षेत्र भी प्रारंभ हो जाएगा। कुछ दूर चलने के बाद जंगलों का सौंदर्य चारों ओर गोचर होने लगता है। जाड़े के कारण हरियाली धूमिल पड़ गई है। फिर भी चारों ओर अनेक प्रकार के छोटे-बड़े पेड़ों की सघनता फैली है। विशेष बात यह है कि यह सारा क्षेत्र एकदम समतल नहीं है कहीं कुछ नीचे झुकता हुआ सा चला गया है। और फिर सामने आगे की ओर कुछ ऊंचा होता चला गया है इस हल्के उतार-चढ़ाव से जंगल की रेखाओं में जो उतार-चढ़ाव आता रहता है, वह उसके आकर्षण को बढ़ा

रहा है। सामने सड़क भी इसी प्रकार कभी बहुत हल्के चढ़ाव पर दौड़ती रहती है और फिर कभी उसी प्रकार के हल्के से उतार में नीचे दौड़ने लगती है। बहुत दूर से एक ऊंचाई का कोण दिखाई देता है, जहां तक जंगल की रेखाएं भी जाकर जैसे रुक गई हैं। पर जरा आगे बढ़ते ही एकरोक हटती जाती है और सामने का उतार फिर फैलता जाता है। यही क्रम चल रहा है। दाहिने-बांए का विस्तार भी इसी प्रकार की हल्की चढान-उतार की तरंगित रेखाओं में लहरें मारता हुआ फैला हुआ है। लगभग आधे घंटे की दौड़ के बाद नायब जी ड्राइवर को निर्देश देते हैं कि आगे बांई ओर मुड़ना है। यहां से मुख्य सड़क को छोड़कर कोठी की सड़क पकड़ना है। कार बांई ओर की सड़क पर मुड़ जाती है। यह सड़क वैसे ही अच्छी है। जंगल इधर अधिक घने और सुंदर होते गए हैं। कुछ मील के बाद ही हम घूम कर एक विशाल कोठी के सामने पहुंच गए। अगर हमको इस अलवर राज्य की कोठी के बारे में पहले से कुछ ज्ञात न होता तो निश्चित हम इसे परियों और दैत्यों वाले किस्सों का जंगल में प्रकट होने वाला महल मान लेते। इस सुंदर महल की कल्पना वहां घने और बीहड़ जंगल में कौन कर सकता था। जंगल की कोठी होकर भी इसकी सज्जा में कहीं कोई कमी नहीं दिखाई दी। सामने लम्बा चौड़ा लान है लान के बीच में सुंदर सा फौवारा है। आश्चर्य है कि इस कोठी के लिए बिजली-पानी की अपनी व्यवस्था की गई है। उसकी रक्षा और व्यवस्था के लिए वहां नौकरों का पूरा स्टाफ नियुक्त किया गया है। कार को देखकर कुछ लोग आ गए। नायब जी ने कोठी के व्यवस्थापक को बुला लिया और थोड़ी देर में वह उपस्थित हो जाता है। वह हम सबको अतिथि के रूप में स्वीकार करके कोठी दिखा रहा है। कोठी के बरामदों में प्रवेश करते ही लगता है कि इसमें सब कुछ सुंदर बनाया गया है। कोठी आधुनिक ढंग की है। इसमें कई बहुत बड़े कमरे ड्राइंग रूम की शैली में सजाए गए हैं। पर सज्जा देखने से जान पड़ता है कि इन कमरों में एक प्रकार से शिकार किए गए जानवरों (प्रायः बाघ) की सुंदर खालों तथा चेहरों की प्रदर्शनी है। कोठी का व्यवस्थापक एक खाल की कथा भी बताना शुरू करता है। महाराज अलवर ने इस बाघ का शिकार कब और कहां किया, किस प्रकार किया। खाल कहां से तैयार होकर आई। कितना खर्च इसमें लगा आदि जीजाजी विशेष रुचि ले रहे हैं। शायद वह इस प्रकार महाराज के प्रति अपना सम्मान प्रकट करते हों। पर मेरा मन इस चर्चा में नहीं लग पाता है। इतने सुंदर कमरों में आदमी केवल पशुओं की खालें और चेहरे ही सजा सकता है, यह बात मेरे मन को वैसे ही कम भारी नहीं लग रही है। कोठी के अन्य कमरों में आराम और ऐश्वर्य के सभी सामान

हैं। व्यवस्थापक ने बताया कि महाराज कुछ दिन इस कोठी में निवास करते थे, इसी कारण सारा प्रबंध है। मेरा मन आश्चर्य और कौतूहल से भर जाता है। कुछ दिनों के आवास के लिए इतना पक्का प्रबंध। जब इसी प्रदेश में बालू की दीवालों पर फूस के झोपड़े छाए जाते हैं। मन में कुछ उमड़ता है, यह ऐसे नहीं चल सकेगा। अब आगत युग में यह सब मिट कर ही रहेगा। और तब इन सबका क्या होगा।

कोठी को देखने में सवा घंटा का समय लग गया। कोठी ऐसी ही है हम जैसे साधारण जनों के लिए उसमें बाथ्स तक आकर्षक है। बाहर निकल कर हम देखते है कि वास्तव में इस कोठी के लिए स्थान भी मनोरम चुना गया है चारों ओर से उठते हुए जंगलों में वह घिरी हुई है। जंगल ही उसकी बाहर की बाउंड्री वाल बनाते हैं। पर नायब जी ने बताया कि यह ऐसा ही नहीं है जंगल के सहारे-सहारे कटीले तारों की फैंसिंग की गई है, जिसमें रात में जंगली जानवर आकस्मिक रूप से इसमें प्रवेश न कर सकें। पक्की दीवार बनवाने से सुंदरता कम हो जाती। चार बजे हैं और अब हम जल्दी में हैं। वहां से भर्तृहरि की समाधि लगभग 14 मील है और लौटने में अधिक रात नहीं करनी है। हम कोठी की सड़क को पार कर फिर मुख्य सड़क पर आ जाते हैं और उसी प्रकार 10 मील की यात्रा करते हैं। अब हमारे बाईं ओर एक पहाड़ी श्रेणी दिखाई दे रही है जो धीरे-धीरे निकट आती जान पड़ती है। कुछ आगे बढ़ने के बाद ही हम दाहिनी ओर मुड़ते हैं। मुख्य सड़क को छोड़कर अब हम एक दूसरी सड़क पर चल रहे हैं, जिसकी हालत बहुत अच्छी नहीं है। कार की गति कम हो गयी है और रामसिंह सम्हल कर गाड़ी चला रहा है। पर यह यात्रा केवल चार मील की है, यही संतोष है।

पर इस सड़क पर आगे बढ़ते हुए हमको सामने दो ओर से पहाड़ियां निकट आती हुई दिखाई दे रही हैं। और लगता है आगे चल कर हम इन दोनों के बीच में आ जाएंगे। दूर से लगता है, जैसे हम किसी घाटी में प्रवेश करने जा रहे हैं। पर ये पहाड़ी बराबर उसी प्रकार निकट आती हुई आभासित होती रही, निकट नहीं आई और हमारी कार दोनों ओर किंचित चढ़ाव पर फैले हुए जंगलों के बीच से दौड़ती रहती है। तीन मील बाद लगता है जैसे एक पहाड़ी श्रेणी लगभग सामने आ गयी है और दूसरी श्रेणी बाईं ओर चल रही है। फिर एकाएक सड़क समाप्त हो जाती है और हम पहाड़ी के रमणीय पार्श्व में पहुंच गये हैं। कार से उतर कर हम चारों ओर दृष्टि डालते हैं। बाईं ओर की पहाड़ी ने थोड़ा सा घेरा डालकर इस स्थान को घाटी जैसा रूप दे दिया है और दाहिनी ओर की पहाड़ी तिरछी होकर कुछ आगे की ओर बाईं ओर की पहाड़ी

के समानांतर चली गयी है। लगता है इस विस्तृत घाटी का यह सकरा और लंबा रास्ता चला गया है। इस उपत्यका जैसी घाटी में हम आगे की ओर बढ़ते हैं। ऊंचे-ऊंचे शाल वृक्ष चारों ओर फैले हुए हैं तथा अन्य पहाड़ी के बीच में यहां-वहां बड़, पाकड़ और पीपल के घने पेड़ भी दिखाई देते हैं कुछ ही दूर पर कई सफेद चीजें चमक जाती हैं जिनमें बीच की अधिक प्रत्यक्ष हैं। नायब जी ने बताया, भर्तृहरि की ये ही समाधियां हैं।

घिरी हुई पहाड़ियों के बीच के उस घने जंगल के एकांत में संगमरमर की भर्तृहरि की समाधि कैसी अद्भुत लगती है। प्रमुख समाधि के साथ छः समाधियां और हैं जो साधारण हैं। यहां इन समाधियों की देखरेख में एक जोगी जरूर दिखाई देता है। उसका प्रबंध इस सुनसान जंगल में किस प्रकार होता होगा। इस विषय में हमने प्रश्न भी नहीं किया, पर जोगी बतला रहा है कि भर्तृहरि ने सात बार समाधि ली है, उसी के ये स्थान हैं। भर्तृहरि वैसे अमर हैं, वे कभी मर नहीं सकते। वे आज भी अपनी खड़ाऊं पर आकाश पर उड़ते, समुद्र के जल पर तैरते देखे जा सकते हैं। गोरख के समान ही वे सिद्ध हैं। बीच की संगमरमर की समाधि के विषय में वह बतलाता है कि किसी समय किसी सेठ का जहाज समुद्र के तूफान में फंस गया और भर्तृहरि अपनी खड़ाऊ पर चलते हुए सागर में प्रकट हुए और उन्होंने उसको बचा लिया, उसी ने यहां एक समाधि बनवाई है। ठीक क्या है। कहना कठिन। पर लोक-कल्पना में भर्तृहरि का अद्भुत व्यक्तित्व स्वरूप इस कथा में रक्षित है। समाधि के दर्शन किये जाते हैं। सुंदर अखंड ज्योति वाला एक दीपक जल रहा है। जोगी ने बताया, सैकड़ों वर्षों से यह ऐसा ही जल रहा है।

सचमुच भर्तृहरि की समाधि के लिए यह स्थान उपयुक्त है। जैसा कल्पना की रंगों से उनको व्यक्तित्व प्रदान किया गया है, वैसी ही यह प्रकृति की गोद है। हम समाधि के समीप खड़े देख रहे हैं, लगता है दो ओर से बाईं ओर की पहाड़ी ने तथा एक ओर से दाहिनी ओर की पहाड़ी ने घेर लिया है। वे पहाड़ियां हरी-भरी हैं और बहुत ऊंची भी नहीं हैं। इस उपत्यका के वृक्षों के शिखर हवा के झोकों से मंद-मंद हिल रहे हैं। छोटे-छोटे असंख्य पेड़-पौधे बड़े पेड़ों को आच्छादित करते चले गये हैं। समाधि के पास दो चार बड़े साल, नीम और बड़ के पेड़ चंवर के समान झीम रहे हैं हम इस पहाड़ी के पार्श्व में घूम रहे हैं, लगता है जैसे भर्तृहरि के स्वप्नलोक में विचर रहे हों। चारों ओर हरियाली है। चारों ओर मुक्ति, चारों ओर अद्भुत शांति है।

फिर हम समानांतर चली गयी पहाड़ियों के बीच से होकर गुजर रहे हैं। लगभग दो सौ गज की दूरी पर पहाड़ियां चल रही हैं और लगता है बीच में कोई

मार्ग चला गया है। यह मार्ग ऊंचे पेड़ों से भरा हुआ है। हम इन्हीं पेड़ों की लम्बी होती छायाओं पर आगे बढ़ते जा रहे हैं लगता है यह जादू का रास्ता है। इस सौंदर्य और शांति के वातावरण में हम सब लोग मौन हैं। एक दूसरे से कोई कुछ नहीं कहता, हम फिर वापस समाधि के पास आ गये हैं। चारों ओर के सौंदर्य को अपने अंदर बटोर लेने का प्रयत्न कर रहे हैं। कुछ ही देर में हमको यहां से चल देना है। एकाएक जीजाजी कह उठते हैं "चाहता हूं, सब कुछ छोड़कर यहीं बस जाया जाए" यहां से चलने का मन नहीं हो रहा है। सचमुच यह भर्तृहरि की समाधि की स्थली ही ऐसी है। यह इसी प्रकार मनु को घेर रही है। जीजाजी जैसे परिवारी गृहस्थ, तथा कामकाजी व्यक्ति के मन में जब यह घटित ही रहा है, तब मेरे जैसे केंद्रहीन व्यक्ति की बात ही क्या कही जा सकती है।

मुझे लग रहा है, मैं युगों से इसी स्थान को खोज रहा था, मुझे यही स्थान भटका रहा था। मैं ही भर्तृहरि हूं जो विरक्त हो चुका है, जिसने राजनीति और श्रृंगार नीति को पूर्णत: आत्मसात् करके भी छोड़ दिया है, मैं इसी वातावरण में फैलना चाहता हूं, इसी के ऊपर मंडराना चाहता हूं। यह श्रेणियों की रेखाएं, उन पर वृक्षों का कम्पन, उपत्यका के वृक्षों के झीमते शिखर और उन सब पर परिव्याप्त एक गहरी ध्वनि,...यह सब मेरे मन को बरबस खींच रहे हैं। लेकिन क्या मैं भर्तृहरि के समान मुक्त हूं। क्या मेरी इच्छाएं, मेरी आकांक्षाएं, मेरी वासनाएं मिट गयी हैं। मिट सकी हैं। यह ऐसा नहीं है। क्षणिक वैराग्य जीवन को मुक्ति नहीं देता। आदमी तो कर्म के बंधन से ही मुक्त होता है। अब हम मोटर पर वापस लौट रहे हैं, पर मेरे मन में अब भी उपत्यका घाटी ज्यों की त्यों फैली है, समाधि अपने श्वेत संगमरमर में चमक रही है, और उसका अखंड दीपक निष्कम्प लौ से जल रहा है।

सागर घेरे विशाल

विद्यानिवास मिश्र

बरसों पहले पंचशील की बधाइयां जब बज रही थीं, ठाकुर भाई ने एक कविता लिखी थी—

"अष्टादश द्वीप माल/सागर घेरे विशाल"

उस कविता की गूंज मन से कभी गयी नहीं। हिंद महासागर और प्रशांत महासागर में सेतु बने हिन्देशिया के द्वीपों की यात्रा की उत्कट इच्छा मन में बराबर बनी रही। रामकथा की यात्रा कैसे इन द्वीपों में हुई, कैसे तमिल और मलयालम की मणिप्रवाल शैली की तरह कवि शैली का इन द्वीपों में विकास हुआ, भारत युद्ध और रामायण ने किस प्रकार न केवल काव्यरूपों को बल्कि वाद्यरूपों की जीवंत परंपरा को जन्म दिया, इसको भी समीप से जानने की उत्सुकता पलती रही। कुमार स्वामी और त्सिमर के कलाग्रंथों ने इस उत्सुकता को और उकसाया। इसलिए जब भारतीय सांस्कृतिक संपर्क परिषद ने दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों की सांस्कृतिक यात्रा के लिए व्यवस्था की, तो सबसे पहले पुलकित मै इसलिए हुआ कि बरसों की संचित अभिलाषा पूरी होगी।

दक्षिण-पूर्व एशिया के दक्षिणी भाग में तीन देश हैं—या ठीक-ठीक कहें तीन देश और चौथे देश थाइलैंड की एक लंबी पूंछ-सवा तीन देश हैं, मलयेशिया सिंगापुर और हिंदेशिया। हिन्देशिया और मलयेशिया का मध्य बिंदु है सिंगापुर। मलयेशिया का एक हिस्सा (जिसे मुख्य भूमि कहा जाता है) एशिया महाद्वीप का छोर है, पर भौगोलिक दृष्टि से बड़े हिस्मे बोर्नियो के खंड हैं, जिसमें आधे से अधिक हिस्सा हिन्देशिया के पास, थोड़ा-सा हिस्सा ब्रिटेन के पास और शेष मलयेशिया के पास। इसके अलावा कई छोटे-छोटे द्वीप हैं, उनमें एक है पेनांग मलयेशिया के उत्तर पश्चिमी छोर पर, छोटा सा, पर बहुत ही खूबसूरत विशेषकर अपने समुद्रसैकत (बीच) के फैलाव और नारियल कुंजों की स्निग्ध छाया के कारण।

हिन्देशिया लगभग तेरह हजार द्वीपों का समूह है, शुरुआत अंडमान-निकोबार से सटे विशाल सुमात्रा से होती है और पूर्व-दक्षिण के इरियान तक विस्तार

चला जाता है। बीच में बड़े द्वीप हैं, सबसे बड़ा जावा (यवद्वीप) मदुरा, बालि, सुंवा, शुलिवेशी, सुबांवा, ऊपर विमान से देखने पर ऐसा लगता है कि विधाता ने विषुवत् रेखा के आरपार के रत्नाकर के ऊपर कहीं-कहीं मरकत की, कहीं-कहीं मुक्ता की लड़ियां न्योछावर कर दी हों। जावा के ऊपर से विमान से यात्रा करते समय अनेक ज्वालामुखियों के गर्त (क्रेटर) दिखते हैं, कई जगह एकदम निर्मल नीलमणि-जैसी झीलें दिखती हैं और कार से यात्रा करते समय जावा और बालि में काली राख बहाने वाली नदियां दिखती हैं। ऐसा लगता है, पूरा द्वीपांतर निबिड़ हरियाली का एक महान् धधकता संकल्प है।

मैं यात्रा की बात कहां से शुरू करूं, समझ में नहीं आता। पेनांग के उलझन-भरे दिन से यात्रा के लगभग अंतिम छोर बालि से प्रस्थान की प्रभातवेला से, जब मन में एक कसक लगी रही कि बालि में कुछ दिन और रुकना क्यों नहीं हुआ। मैं कथाक्रम में उलट कर बालि से ही शुरु करूंगा। जकार्ता में भारत के राजदूत श्री ब्रजेश मिश्र ने (जो भारत के संन्यस्त चाणक्य पं० द्वारिकाप्रसाद मिश्र के सुपुत्र हैं) कहा कि बीच के कुछ कार्यक्रम काटकर बालि को अधिक समय दीजिए। वहीं पर भारतीय दूतावास के प्रथम सचिव श्री गैड ने तत्काल फोन से संपर्क करके ऐसी पक्की व्यवस्था की कि एक क्षण भी नष्ट नहीं हुआ।

बालि हम (अनिल और मैं) कार्तिक पूर्णिमा के दिन पहुंचे थे। वह दिन वार्षिक मंगलोत्सव का दिन है। घर-घर पवित्रीकरण के अनुष्ठान होते हैं, घर के बाहर के देवस्थान पर विशेष पूजा होती है। चौराहों पर चत्वर-बलि दी जाती है। बालि में दसवीं-ग्यारहवीं सदी का सरल आगम प्रधान हिन्दू धर्म है। इसमें महायान बौद्ध धर्म भी घुला हुआ है। अंतर इतना है कि जहां पहले शिवलिंग की अर्चा होती थी और देवमूर्तियों की पूजा होती थी, वहां अब सात ऊपर वाले भुवनों के प्रतीक सप्तखंडीय यूप सरीखे ऊंचे देवस्थान के शीर्षस्थान में अव्यक्त अचिंत्य पुरुष की आराधना होती है। पूजन षोडषोपचार विधि से सम्पन्न होता है। तांत्रिक मंत्र ही उच्चरित होते हैं और स्फुट रूप से आंग (ओम के स्थान पर), उसके बाद क्लींग (क्लीं), ह्रींग (ह्रीं) जैसे बीजाक्षर और फिर अस्फुट अंत में नमः किसी कदर पहचाना जा सकता है। उच्चारण करने वाले पुजारी बिलकुल ओड़िया ब्राह्मणों की तरह ही स्वरों का उच्चारण करते हैं।

मेरे एक मित्र ने बतलाया कि हिन्दुस्थान से आये लोगों को (विशेष रूप में पंडितों को) अब भी लोग कलिंग कहते हैं। लगता यही है कि चौदहवीं पंद्रहवीं सदी तक जो थोड़ा-बहुत संपर्कसूत्र हिन्दुस्थान से इस द्वीप का बना रहा, वह कलिंग प्रदेश के माध्यम से ही था। पहले लोगों का विचार यही था कि दक्षिण

भारत से शैव सिद्धांत यहां आया, पर मैंने जब अपने अध्ययन के आधार पर यह इंगित किया कि मुझे लगता है कि कश्मीर शैव प्रत्यभिज्ञादर्शन की छाप अधिक गहरी है तो कई विद्वानों ने इसका समर्थन किया और कहा, यहां के धर्मदर्शन पर नयी दृष्टि से मूल्यांकन आवश्यक है।

बालि में हम सीधे देनपसार हवाई अड्डे से उदयन विश्वविद्यालय गये। उदयन बालि का सबसे बड़ा राजा हुआ है, उसके प्रभावक्षेत्र में जावा का भी मुख्य भाग रहा है। विश्वविद्यालय छोटा सा है, सामने गणेश की और भीतर सरस्वती की सुन्दर प्रतिमाएं हैं। सबसे पहले पांडुलिपि संग्रहालय दिखाया गया, जिसमें 9000 के लगभग लोन्तार (लोन-ताड़पत्र, तार-ताड़, पावरोटी की तरह लोन तार-ताड़पत्र पांडुलिपि) ग्रंथ दिखाये गये; ये आयुर्वेद (उसद-औषध) तत्व (दर्शन) किदुंग (काय) और रामायण-महाभारत से संबद्ध है। अधिकतर का रचनाकाल 14वीं से लेकर 15वीं सदी के बीच का है। पर बिडम्बना यह है कि वहां संस्कृत के अच्छे अभ्यस्त विद्वान नहीं, पुरानी लिपि को भी पढ़ने वाले बहुत कम रह गये हैं। लिपि तो प्राचीन पल्लव लिपि से ही विकसित प्रतीत होती है, पर यह क्षेत्र ऐसा है जिसमें भारत की साझेदारी की बहुत बड़ी भूमिका हो सकती है। स्व० डा० रघुवीर ने श्लोकांतर और बृहस्पति-तत्व का उद्धार किया था, पर वह तो एक बूंद मात्र है। बालि के ही संस्कृत के एक आचार्य श्री सुधार्त ने मुझे कुछ देवनागरी लिप्तर वाले छोटे ग्रंथ दिये कि इनके अर्थ बतला दें; उनमें दो गद्य में हैं, एक पद्य में। पद्य में रामचरित है, वर्णमाला के प्रत्येक वर्ण से प्रारंभ होने वाले श्लोक क्रम से रखे गये हैं, अ से लेकर ह तक पूरी वर्णमाला बीजाक्षर समुदाय बन जाती है और रामचरित भी पूरा हो जाता है।

कुछ ग्रंथों में अत्यंत सुंदर रेखाचित्र अंकित थे। उस चित्रकला पर ही कार्य हो या केवल उनकी अनुकृति करायी जाये तो बहुतसी दरिद्र चित्रावलियां, जो भारत में सचित्र महाभारत के नाम पर बिकती हैं, उनसे नजात मिले। किसी भारतीय को हिन्दू धर्म की सुंदरता और उसका सौष्ठव देखना हो तो वह बालि जरूर आये। भव्यता का बोध यदि एलोरा से होता है, महिता का हिमालय से, अनंतता का कन्याकुमारी से और तप का चित्रकूट से या विध्याटवी की रसवंती नर्मदा से, शुचिता का गंगा से तो सुंदरता का बोध बस, बालि से ही संभव है। बालि के लोगों ने किस सहजता के साथ बिना किसी अनुष्ठानिक विशाल आंडवर के हिन्दू धर्म की अनुप्राणित लय से अपने जीवन की लय मिला रखी है, यह बस सीखने और देखने की बात है।

मैंने केवल नक्शे में वैदिक ग्राम का विन्यास देखा था, पर किस प्रकार छोटी-छोटी चहारदीवारियों के भीतर विभिन्न प्रयोजनों से छोटे और साफ-सुथरे घर

बनाकर के घरों की रचना परिवार के मूर्तिमान् विग्रह के रूप में की जा सकती है, यह बालि में ही देखा। बालि की कल्पना वहां के निवासी पद्मासन के रूप में करते हैं। बीच में केसर के रूप में अगुंग पर्वत है, उसी की ढाल पर सारा देश पंखुड़ियों की तरह फैला हुआ है। हर बस्ती को उसी पर्वत के आसपास से आने वाली जलधारा नदी या कुल्या के रूप में सींचती है। हर घर में एक देवस्थान है, हर पुर में एक अलग है और फिर चार स्थान हैं, जो क्रमशः पूर्व में ईश्वर, दक्षिण में ब्रह्मा, पश्चिम में महादेव, उत्तर में विष्णु का स्थान है। बीच में अगुंग की ढलान पर बेसाकिह् (वासुकि) में बालि के मंदिरों का मातृ मंदिर है, केवल वहीं शिव, शक्ति दोनों के अलग-अलग स्थान हैं। संभवतः यह पंचमुख परमेश्वर की इस प्रकार की रूपांतरित कल्पना है, सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष और अघोर भैरव के बीच में अव्यक्त अचिंत्य ईशान है।

इस मंदिर में प्रतिवर्ष वर्षारंभ (चैत्र शुक्ल प्रतिपदा) के दिन पर्व होता है। 1979 में शत वार्षिक पर्व था। यहां लोग शकसंवत् चलाते हैं; 1979 से 1901 शक्संवत् था। 28 मार्च 1979 से 11 दिनों तक बेसाकिह् में एकादश रुद्र महोत्सव संपन्न हुआ।

बालि के हिन्दु जीवन में शरीर और मन की शुचिता का बड़ा महत्व है वहां 4 बजे सुबह स्नान करके लोग बाजार चले जाते हैं। सुरुचिपूर्ण वेशविन्यास गृहविन्यास और पूजनविन्यास में ये बेजोड़ हैं। अगहन में धान की पहली फसल (क्योंकि साल में दो फसलें होती हैं) कटती हैं, उस समय कृतज्ञता ज्ञापन के निमित्त गांव-गांव श्रीदेवी (जो भारत में प्राचीन काल में भूदेवी थीं) की पूजा होती है नारियल की हरित पत्तियों, फूलों, नारियलों और भोज्य सामग्री की भेंट दी जाती है और उसके साथ गीत, नृत्य, वाद्य, का समारंभ भी होता है। साधारण आदमी का भोज्य चावल और चूजे का मांस है, वहीं देवता का भी भोज्य है। पर वानप्रस्थ जीवन व्यतीत करने वाले गुरु पेदंड (आचार्य पुरोहित) का भोजन निरामिष होता है और उसका समय जप, योग, ध्यान और तीर्थ बनाने में बीतता है या फिर स्वाध्याय में। ऐसे गुरुओं की संख्या बहुत कम है। शायद 500 से कम। प्रायः सामान्य पूजा उनके प्रतिनिधिभूत पुरोहित संपन्न करा देते हैं।

बालि की आबादी 30 लाख होगी। यह द्वीप उन्नीसवीं सदी तक स्वतंत्र रहा, बीसवीं सदी में इस पर डच छाया पड़ी। हिन्देशिया का अंग होने के बाद इसको पर्यटक उद्योग की विषैली छाया से मुक्त करने की कोशिश शुरू हो तो गयी है, पर बालि की संस्कृति के लिए खतरा तो उपस्थित हो ही गया है। जो कला, जो गीत, जो नृत्य जीवन के उल्लास की अभिव्यक्ति रहे, वे अब बिकाऊ

हो रहे हैं। वहां का कलाकार मूर्ति रचता था, घर-गांव की शोभा बढ़ाने के लिए; गाता था, नाचता था, चतुर्दिक् व्याप्त देवभाव को रिझाने के लिए; अब होटलों में इनका आयोजन होता है।

देनपसार हवाई अड्डे पर लौटती बार काफी रुकना पड़ा और देखा कि बालि की एक छोकरी विगलित-यौवना पर्यटक महिलाओं के पतियों को बड़े ढंग से रद्दी से रद्दी बातिक की ड्रेस खरीदने के लिए लाचार कर रही है। वह एक ड्रेस धारण करके बीस-तीस सेकंड परेड करती है, इतने में पत्नी के सती-पुरुष पतिदेव कहते हैं, प्यारी, तुम पर यह फबेगा और वे गुजरे हुए जमाने को बुलाने के चाव में ड्रेस खरीद लेती हैं। उस छोकरी पर तो हर ड्रेस फब जाता था, पर मैं देख रहा था कि इन ताड़काओं को तो यह बातिक फाड़ खायेगा। पर उपभोक्ता संस्कृति की लाचारी, वेशभूषा, प्रसाधन और प्लास्टिक सर्जरी के बल पर खंडहरों को इमारत की शक्ल देने का संकल्प कभी नहीं थकता, थक जाता है जीवन का रस, जिसके कारण सारे विश्व की परिक्रमा कर आते हैं, प्रकृति की सुंदरता के ढेर सारे रंगीन चित्र लेते हैं, कलाकृतियां बटोरते हैं, हस्तशिल्पों से सजते हैं, पर वसंत इतना निर्दयी है कि वह फिर लौटकर आता नहीं, क्योंकि वह बाहर का तो है नहीं, अंतर की उत्कंठा का चहेता सहचर है। यह उत्कंठा कभी ऊबती नहीं और उपभोक्ता सभ्यता का तो परिणाम ही है ऊब।

था तो अगहन, पर बालि में वसंत आ गया था। आमों में मंजरियां लदी हुई थीं। कटहल में फल बड़े हो रहे थे। बालि से विदाई लेते-लेते लगा इस भूभाग से कैसी विदाई।

क्रम उलटता है। बालि के पहले मैं जोग्यकर्ता (अयोध्याकृत) शांति के लिए बनायी नगरी गया था। वहां भी गजमद विश्वविद्यालय के अतिथि भवन में ठहरा था। इस नगर को हिंदेशिया का कलाकेन्द्र और विद्याकेन्द्र कहा जा सकता है। इसी के आसपास सबसे बड़े पुरातात्त्विक महत्त्व के स्थल हैं, बोरोबुदुर, चंडी मेन्दुत, पांबनम् और चंडी पवन। यहीं हिंदेशिया के कई प्रसिद्ध चित्रकार रहते हैं। यहां एक अस्ति नाम से अच्छा कलाकेन्द्र है। इसके निदेशक श्री सुदर्शन बड़े ही प्राणवान् कलाकार हैं। भारत में कई बार आ चुके हैं। यहां संगीत, नृत्य और नाट्य का प्रशिक्षण दिया जाता है।

डा० सुदर्शन से बात करने पर लगा कि कला-निष्ठा मजहब से कितनी मुक्त हो सकती है। काश यह हमारे देश में संभव हो सकता और ग से गणेश पर तअस्सुबी एतराज न होता। बोरोबुदुर गया तो रास्ते में संगतराशों की बस्ती मिली। पता चला कि कब्रगाहों पर पत्थर लगाने के लिए पत्थरों पर जावा

रामायण या भारत युद्ध के वाक्य टंकित किये जा रहे हैं । प्रत्येक व्यक्ति की यह आखिरी तमन्ना होती है कि मेरे स्मृतिलेख पर मेरा यह प्रिय वाक्य अंकित हो । यह भी देखा कि आज भी शिल्प-परंपरा जीवंत है, श्री सुदर्शन की "अस्ति" में या शिल्पकेन्द्र "अस्त्रि" में सब जगह मुक्त भाव से पारंपरिक कला-रूप आधुनिक परिवेश में नये संवार के साथ ढल रहे हैं, नर्तित हो रहे हैं । यहां का बुद्धिजीवी मुसलमान गर्व से कहा करता है कि हमारा इतिहास 4-5 सौ वर्षों से अरब सौदागरों के आने की तिथि से नहीं शुरू हुआ, यह दो हजार वर्ष पुराना है ।

बोरोबुदुर और प्रारंबनम् (परब्रह्म का जावाई रूपांतर) में दो अद्भुत कथा जाल देखे, एक जगह जातक-कथाओं की शृंखला, दूसरी जगह पूरी रामकथा । मैं नहीं जानता इतने पूर्ण और समग्र रूप में हिन्दुस्तान में भी ये कथाएं कहीं शिल्पित हुई हैं । बोरोबुदुर तो महाकाव्य है । उसकी जमीन तांत्रिक मंडल परिकल्पना है । पर उसमें अंकन अमरावती की सुकुमारता और ऐलोरा की अन्विति को अपने में समाविष्ट किये हुए है । सबसे बड़ी बात यह है कि हिंदेशिया के कला गुरुओं ने भारत से वर्ण्यवस्तु भर ली, पर कला और उसकी अवतारणा उनकी निजी प्रतिभा की प्रसादी है । बोरोबुदुर महायान बौद्ध धर्म का एक प्रकार से अप्रतिम स्मारक है । संयुक्त राष्ट्र संगठन के सहयोग से उसका पुनरुद्धार हो रहा है । इसीलिए पूरी छवि देखने को अभी तीन-चार वर्ष मिलेगी, पर जब मिलेगी तो लगभग 45 वर्ष पूर्व कही एक वियतनामी कला चिंतक पाल मूस की यह बात अच्छी तरह परखी जा सकेगी कि हिन्दुस्तान की विश्व दृष्टि हिंदेशिया की जमीन पर ज्वालामुखी के गर्भ से पैदा हुई प्रस्तर पट्टिकाओं में जैसा जीवंत आकार ग्रहण कर सकी है, वैसा दूसरा उदाहरण कला के इतिहास में नहीं है । पाल मूस की "बोरोबुदुर" पुस्तक बोरोबुदुर का वर्णन मात्र नहीं है, बोरोबुदुर का व्याज से भारतीय तत्व दृष्टि पर एक सर्जनात्मक भाष्य है ।

बोरोबुदुर चढ़ती दोपहरी में गया था, पर न कहीं थकान, न भूख, न प्यास, बस एक-एक जातक कथा के ब्योरे पर नजर टिकती थी तो कहीं जाने का नाम नहीं लेती थी । मेरे मेजबान थे दो सिंधी भाई, वे लोग नीचे ही सुस्ताते रहे । अनिल फोटोग्राफ बस अंदाज से लेते रहे और मैं उन्हें एक-से एक दृश्य दिखाता रहा, यह बावेरू जातक है, यह जहाज है । यह मृगदाव है । यह वेस्संतर जातक है । दूर से यह बोरोबुदुर एक मेरु की तरह अवस्थित लगता है, समस्त सृष्टि का स्थापत्य प्रतिरूप ।

बोरोबुदुर से थोड़ी दूर पर एक और बौद्ध चंडी है । चंडी का अर्थ यहां मंदिर है । इसकी विशेषता इसकी तीन दीवारों पर अंकित अवलोकितेश्वर की विशाल अर्ध-उभरी मूर्तियां हैं । उसके बाद हम लोग प्ररंनम् गये ।

यहां विष्णु, शिव और ब्रह्म के मंदिर थे, अब साबुत केवल शिवगृह है। (यही नाम यहां के शिलालेखों में है) शेष मंदिरों के टुकड़े-टुकड़े जोड़कर इन्हें खड़ा करने का उपक्रम चल रहा है। शिवगृह के ही चारों ओर रामायण कथा की पट्टिकाएं हैं। कथा क्रम पूरा वाल्मीकि रामायण का ही है। लोगों का खयाल है कि जावा में रामायण की रचना भट्टिकाव्य के आधार पर हुई। पर वस्तुतः प्रेरणा स्रोत वाल्मीकि रामायण ही है, भट्टिकाव्य से कथासंगठन और शिल्प भर लिया गया है। प्रांबनम् में ही पता चला कि रात में रामलीला होगी और हमने सोचा यह अवसर नहीं खोना है।

मुंहमांगा किराया देकर रात में हम वहां पहुंचे। बड़ा भारी चबूतरा, पीछे शिवगृह, चबूतरे पर 200 से 250 तक अभिनेता एक साथ संचरणशील, और बैठने की जगह खुले आसमान के नीचे सीढ़ियों (ग्रीस यूनान) के ऐंफीथियेटर की याद आयी और जब समुद्र मंथन से लीला शुरू हुई, तो चमत्कार हो गया। पीछे से मंदिर, ऊपर से शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी का लगभग पूरा चंद्रमा और सीढ़ियों पर अपार जनसमूह सारी रात बैठने के लिए तैयार। लगा, कि राम का वनवास जावा में ही हुआ था। मेरे एक पथदर्शक ने कथा सुनायी कि राम जब इस द्वीप से जाने लगे तो लोगों ने आशीर्वाद मांगा। राम ने आशीर्वाद दिया—बस यहां सदा हरियाली और हंसी-खुशी बनी रहेगी। स्त्रियों ने सीता के पैर पकड़े और उन्होंने कहा कि तुम सदा सुहागिन रहोगी। सीता जैसी पतिव्रता का आशीर्वाद खूब फला-फूला, वैधव्य यहां रहने नहीं पाता और हरियाली तो खैर ऐसी कि थोड़ी-सी जमीन भी धूसर नहीं दिखती, या तो जंगल या खेत या बाग या फिर काली मिट्टी पर बहता पानी निर्मला।

हां, तो रामलीला शुरू हुई और साठ-सत्तर लड़कियों के हाथों में नीलपट फहरा उठें, समुद्र उद्वेलित हो गया और इतने में वानरों ने राह बनायी। बीच में सेतु के रूप में विजडित कन्याएं बिछ गयी, नीचे नीलपटों की लहरों मथती रहीं। वृन्द वाद्य नाटकीय मोड़ों का साथ दे रहा था और लीला आगे बढ़ रही थी। चांदनी में वेशभूषा और नृत्य के रंग ऐसे खुल रहे थे, जैसे लगता था कोई चित्रकार भित्तिचित्र के रंग धो-धोकर निखारता जा रहा हो। कमबख्त बादल आ गये और लीला बीच में ही उस दिन छोड़नी पड़ी, क्योंकि सारी रंग-शाला मुक्त गगन-वितान के नीचे थी।

गजमद विश्वविद्यालय में दूसरे दिन विश्वविद्यालय के अनेक अध्यापकों से, बातचीत करने का सुयोग मिला। संस्कृत पढ़ाने वाले कैथोलिक बंधु कुंतारों से रेक्टर श्री सुखजी (सुखजित) और शास्त्र विभाग (फैकल्टी ऑफ लेटर्स) के अन्य लोगों से बातचीत के बीच दो ही बातें बार-बार उभरकर आयी कि जावा

का पुराना साहित्य, पुराना स्थापत्य और पुराना शिल्प पुनराकलन में भारत का सहयोग मांगता है। जब बालि से जकार्ता लौटने पर वहां की संस्कृत आचार्या डॉ० सुमद्रियों से बात हुई तो उन्होंने यही कहा कि हमें आवश्यकता है संस्कृत के व्यक्ति की, जो भारत से यहां आकर कुछ वर्ष बिताये, हमारी धरोहर को अपनी धरोहर समझे और समानताओं की तलाश के साथ-साथ भूमि-भाग्य के फल रूप में प्राप्त हमारी विशेषताओं का मूल्यांकन इस दृष्टि से करे कि एकता भाव में होती है, रूप में नहीं और हमारा जो राष्ट्र सूत्र है अनेक में एक (भिन्नेक तुंगल इक), उस सूत्र को अपने सूत्र के साथ जोड़े।

पर धर्मनिरपेक्षता का खोखला अर्थ करने वाली हमारी निःस्व सांस्कृतिक दृष्टि इस अपेक्षा की पूर्ति कर सकेगी, मैं क्या कह सकता हूं। हमने तो मिथ्या भय से अपनी सूरत बिगाड़ रखी है। हिंदेशिया से पहले मैंने मलयेशिया में कई दिन बिताये थे और एक भाषा के विद्वान की बात आज तक मुझे झकझोर रही है—"कैसे लोग हैं आपके देश के, भाषा शास्त्र के इतने बड़े तत्ववेत्ता जहां पचीस सौ वर्षों से हुए हों, वहां इतनी छोटी-सी बात नहीं समझी जा सकती है कि देश की अस्मिता अपनी भाषा से होती है और एक देश में एक मुख्य भाषा होती है। वह दूसरी भाषाओं से समृद्ध हो या दरिद्र यह तथ्य बिल्कुल ही उपेक्षणीय है। अगर वह संपर्क भाषा की क्षमता रखती है, तो दूसरी भाषाओं की उपेक्षा उसका सुनियोजित विकास करना ही होगा।

मलयेशिया में 200 से अधिक भाषाएं हैं, हिंदेशिया में इनसे भी ज्यादा और जिस भाषा को राष्ट्रीय अस्मिता का वाहक हमने बनाया वह न उतनी विकसित थी, न बहुसंख्यक वर्ग की भाषा थी, वह तिजारती और दूसरे स्तर के सामान्य व्यवहार के स्तर पर स्वीकृत थी। उसी को हम समृद्ध बना रहे हैं, पहले हमने अंग्रेजी से शब्द लिए पर अब धीरे-धीरे अपने प्राचीन स्रोत संस्कृत की ओर हम मुड़ रहे हैं, क्योंकि वे शब्द हमारे सोचने के तौर-तरीके में आदत (इसका अर्थ ट्रैडिशन होता है और यह एक धर्म से भी ऊपर महत्व रखने वाला जीवन-मूल्य है) के अंग बन गये हैं।

यहां दशा यह है कि हम साहसपूर्वक यह बात कह भी नहीं सकते। जिस दिन मैं अपनी यात्रा के अंतिम छोर सिंगापुर से प्रस्थित हुआ, उस दिन एक ही खयाल बार-बार मन में आता था कि अंग्रेजों ने हमारे दिमाग में जो उपनिवेशवादी विचार भरा (क्योंकि खुद उनका दिमाग उपनिवेशवादी था) और हमने बृहतर भारत को भारत के सांस्कृतिक उपनिवेश के रूप में समझा, उस जहरीली चिंतन-प्रक्रिया से मुक्ति कब मिलेगी, कब हम यह भी सोच सकेंगे कि इतने बड़े भूभाग ने हमें अपनाया, न हमारी राजनीतिक सत्ता के कारण, न

हमारी तिजारती कुशल बुद्धि के कारण, न हमारे कला-संस्कार की प्रखरता के कारण, उन्होंने अपनाया यह जानकर कि हम कभी कुछ ऐसे भी थे, जब सत्ता, व्यावसायिकता और कला मुख्डम से अलग भी कुछ थे, तो कुछ थे शुद्ध मानव के रूप में या और ठीक-ठीक कहें शुद्ध जीव के रूप में, जीव से भी अधिक भाव के रूप में, मनुष्य की भावन-शीलता के प्रति श्रद्धा के रूप में। फिर कभी हम अपने उस अपने को पा सकेंगे। नहीं जानता, परंतु अगर इन देशों के अपनेपन को हम पहचानना अब से भी शुरू कर दें तो कम से कम इन देशों के अपनत्व का प्रतिबिंब तो हमारे चित्त में अवश्य पड़ेगा और वह चित्त शायद कुछ अधिक अपना चित्त होगा।

रोहतांग के पार

कृष्णनाथ

रोहतांग जैसे कब्र की उठी हुई मिट्टी हो। मढ़ी इसकी एक ढाल पर है। जो छूट चुकी है। खोकसर दूसरी ढाल पर है जो अभी आगे है। पहले चढ़ाई थी तो अब उतराई है। खोकसर एक तिरमुहानी है। इससे होकर एक रास्ता केलंग जाता है, एक रास्ता काजा जाता है और एक रोहतांग से आता जाता है। रोहतांग के बाद यह पहला पड़ाव है। चंद्र नदी के किनारे है। इस पार सड़क के दाहिने-बायें दो-एक होटल हैं। एक सरकारी रेस्ट हाउस है। उस पार डमफुग की गुफा और मंदिर है। इस पार से गुफा नहीं दीखती है। सिर्फ उसका बाह्य दीखता है। लेकिन गुफा का "बाह्य" कम है, अंदर ज्यादा है। उस अंतर में क्या है ?

अभी रोहतांग चित्त से उतरा नहीं है। कानों में जैसे सनसना रहा है। ऊंचाई पर हवा का दबाव कम हो जाता है। अलग-अलग ऊंचाई की अपनी सनसनाहट होती है। फिर ठण्ड भी है। रोहतांग तो जैसे सपाट है लेकिन सामने हिमशिखर हैं। उन पर तीसरे पहर की धूप है। नील मणि की आभा है, कहीं नंगी चट्टान है। कहीं नील लोहित है। आंख नहीं टिकती। कान जैसे सनाका खा रहे हैं। रोम-रोम में रोमांच है। कुछ अंदर से गनगना रहा है। एक लहर हिम की है, एक लहर रक्त की है। अपने शरीर में इन्हें लपेटे रोहतांग पार कर आया। चित्त में अभी भी रोहतांग बसा है।

पहले खोकसर शरीर से टकराता है। फिर चित्त में उतरता है। पहले ध्यान नाम पर जाता है। खोकसर नाम का अर्थ क्या है ? बस नाम है, रूढ़ है। अर्थ का पता नहीं है। रूप आंखों में बसता है, गुण इतनी जल्दी प्रकट नहीं होता। कर्म के लिए भी बहुत अवकाश नहीं। नाम, रूप, गुण, कर्म से ही परिचय होता है। सो खोकसर का परिचय अल्प ही रह जाता है। नाम परिचय होता है, उसका अर्थ नहीं। रूप, गुण, कर्म का भी आधा-अधूरा। लेकिन यहां खाना गरम मिल सकता है। रोहतांग पार करने की उत्तेजना शिथिल पड़ रही है तो भूख लग आयी है। दोपहर का भोजन थोड़ी देर से करते हैं। यह ढाबा भी है और छोटी-

मोटी परचून की दुकान भी। यहां नमक, बिस्कुट, साबुन वगैरह दीखता है। कुल्लू मनाली से आता है। केलंग, काजा, खोकसर होकर जाता है।

खोकसर से हम चंद्र की घाटी में बढ़ते हैं। पहाड़ नंगे हैं घाटी गहरी है। नदी भी चंद्रमा सी दूधिया है और उछलती बहती है। घाटी में इसकी ध्वनि फैलती है। आकाश इस पर जैसे झुका हुआ है। जीप की ध्वनि इससे टकराती है। हिमालय की कोख में है। यहां धूल है। बारिश तो यहां होती नहीं। वह तो हिम-रोध के उस पार कुल्लू-मनाली में होती है। इस पार बहुत करके या तो बर्फ पड़ती है, या कभी बर्फ की ही फुहार। अभी तो धूप है और धूल है।

सिसु के पास बर्फ से पिघलकर कई एक सोते बहते हैं। यहां कुछ वनस्पति है। हरियाली है। नमी है। आबादी है। स्त्री-पुरुष बच्चे हैं। जीप पर खदक लहरा रहा है। कुल्लू मनाली में स्वागत में जो वस्त्र माला की तरह पहनाते हैं, उनमें से एक जीप के दंड में बांध दिया है। यह धर्मध्वज की तरह लहराता है तो स्त्री-पुरुष "जुले, जुले" करके नमस्ते करते हैं। पहाड़ों में यह शिष्टता हर ओर है। कुमाऊं में भी बस्ता सम्हालते, टोपी लगाये स्कूल जाते बच्चे नमस्ते करते हैं। भले लगते हैं। यहां "जुले" कहते हैं। हम भी "जुले, जुले" दोहराते हैं।

सिसु गेपंग राजा का स्थान है। गेपंग लाहुल के देवता हैं। गेपंग का शाब्दिक अर्थ है जिसने कुशल छोड़ दिया। लेकिन व्यवहार में गेपंग राजा लाहुल के कुशल क्षेम का देवता है। कहते हैं कि यह कुल्लू के मलाणा गांव के जमुलू का भाई है। यह मलाणा गांव का जमुलू भी विचित्र है मलाणा गांव की सम्पत्ति व्यक्तिगत नहीं है, जमुलू देवता की है। ज्येष्ठांग और कनिष्ठांग के ग्यारह सदस्य इसका प्रबंध करते हैं। जो बोता है सो मालिक है। यह पीढ़ी दर पीढ़ी चला आ रहा है। सरकार को जो कर के रूप में देते हैं उसका दस गुना जमुलू देवता को अन्न के रूप में देते हैं। आगंतुक तीन दिन तक देवता के मेहमान होते हैं। तीन दिन के बाद देवता की अनुमति से रह सकते हैं। जमुलू देवता का निर्णय अंतिम होता है। कुल्लू की प्राचीन राजधानी से नगर से नौ मील दूर मलाणा गांव प्रजातंत्र के विकास का एक चरण है। हालांकि युग बदलता गया, मलाणा का जमुलू बदला नहीं। इसलिए अब तो एक अंधविश्वास का ही प्रतीक रह गया है। नये ज्ञान-विज्ञान को लेकर आगे बढ़ना नहीं हुआ।

सिसु के गेपंग और मलाणा के जमुलू भाई हैं। सिसु में किसी ने कहा कि गेपंग कभी कुल्लू जाते हैं। सिसु जिसकी तलहटी में है वह गेपंग शिखर कहलाता है। यहां गेपंग राजा का वास है। कहते हैं यह शिखर लाहुल के दोनों छोर—रोहतांग और बारालाचा दर्रों से दीखता है। सिसु गांव में गेपंग राजा का

मंदिर है। यह जान कर हम सिसु में थोड़ी देर रुके। गेपंग के मन्दिर में गये। मन्दिर तो कुछ विशेष नहीं है। जैसे लाहुल के घर होते हैं वैसे ही सीढी चढ़कर एक कोठरी है। उसमें गेपंग राजा हैं।

गे का अर्थ है पुण्य, पंग का अर्थ है छोड़ना। गेपंग का अर्थ हुआ जिसने पुण्य या कुशल या भला छोड़ दिया हो। शायद यह शब्द बौद्धों ने गेपंग महाराज के अवमान के लिए गढ़ा। गेपंग देवता बलि स्वीकार करता है। बौद्ध प्राण लेने से विरत रहने को शील मानते हैं। इस शील को छोड़ने के कारण यह गेपंग है। कोई मूर्ति नहीं, विग्रह नहीं। सिर्फ चमर है, वस्त्र है, फिर भी गेपंग राजा है। यहां से आने जाने वाले इन्हें पैसा या रेखा भेंट करके जाते हैं। ये देवता तीन साल में एक बार कुछ दिनों के लिए अपने मंदिर से बाहर निकलते हैं। कभी-कभी तो वे महीनों तक गांव में घूमते रहते हैं। उन दिनों रोज गांव में बलि चढ़ती है। किसी के असाध्य रूप से बीमार होने पर भी बलि चढ़ायी जाती है। इस परम्परागत बौद्ध देश में गेपंग महाराज के नाम पर कितने बकरों, भेड़ों की जान जाती है।

गेपंग राजा का किस्सा गिल के वृतांत में यों है। कहते हैं गेपंग राजा लाहुल में लद्दाख से बारालाचा दर्रे के पार से आये। उनके साथ उनकी मां और कई छोटे-मोटे देवता थे। उस समय बारालाचा दर्रे के पास राक्षस रहते थे। वे नहीं चाहते थे कि गेपंग लाहुल आयें। क्योंकि यह तो उनका अपना क्षेत्र था। गेपंग को थमाने के लिए उन्होंने हिम का तूफान पैदा किया, कई दिन रात लगातार हिम वर्षा होती रही। दर्रा बर्फ से ढंक गया। भुरभुरी बर्फ पर से गेपंग ने अपने साथियों के साथ दर्रे को पार कर लिया। उनकी मां रास्ते में हिमस्त्राव में पड़ गयीं। गेपंग की टोली बढ़ती गयी। छह दिन बाद गेपंग राजा दर्रे के शीर्ष पर वापस लौटे। अपनी मां को बर्फ से खोजकर निकाला और उन्हें सकुशल वापस लाये। देवता लाहुल आये और सिसु में बस गये। कहते हैं कि वे आज भी गेपंग शिखर पर वास करते हैं।

यह भी बताते हैं कि गेपंग राजा लाहुल में कई किस्म के अन्न ले आए। इसके पहले घाटी में राक्षसों का राज था जो मांसभक्षी थे। जब देवता लाहुल आने लगे तो उन्होंने कुछ अन्न लाने का निश्चय किया। राक्षसों से छुपाने के लिए गेपंग राजा ने और उनके साथियों ने थोड़ा-थोड़ा हर किस्म का अन्न अपने मुंह में भर लिया। बारालाचा के आगे के मैदानों में राक्षसों का और देवताओं का युद्ध हुआ। एक राक्षस ने गेपंग की ठुड्डी पर मुष्टिका का प्रहार किया। गेपंग का दांत टूट गया और बीज भी बहुत सा नष्ट हो गया। जो थोड़ा सा बीज बचा उससे ही लाहुल में जौ, गेहूं होता है। यह लाहुल की मुख्य फसल है।

गेपंग राजा की इस कथा का मतलब क्या है ? हिमालय के इस प्रत्यंत प्रदेश, लाहुल-स्पीति, में परम्परागत बौद्ध बसते हैं। इन परम्परागत बौद्धों के अपने देव सपरिवार हैं। बुद्ध हैं, अवलोकितेश्वर हैं, तारा हैं, पद्मसम्भव हैं, नागार्जुन हैं, हयग्रीव हैं। किंतु इनके साथ-साथ आदिम देव परिवार भी हैं। गेपंग राजा उसी देव परिवार के हैं। फिर जगह-बेजगह ग्लेशियर आते हैं। खेत, गांव, मकान बहा ले जाते हैं। उनकी विघ्न शांति के लिए भी देवता हैं। फिर तरह तरह के रोग-शोक की जोगिनियां हैं। इन आदिम विश्वासों पर ही बौद्ध धर्म आया। यहां शिखरों पर जैसे बर्फ नहीं पिघलती और नील मणि बन जाती है वैसे ही आदिम देव परिवार, बौद्ध देव परिवार और चंद्र भागा की निचली घाटी में ब्राह्मण देव परिवार सब जमा हुआ है। उनके इतिहास की खोज में भूगोल का ध्यान रखना अच्छा होगा। चंद्र और भागा नदियों की ऊंचाइयों का आदिम विश्वास है, फिर बौद्ध पूजा पाठ है। कुछ-कुछ ब्राह्मण व्यवस्था की जाति प्रथा का भी असर है। ठाकर ऊंचे हैं। लोहार, सिपी, बेदा नीचे हैं। हालांकि बौद्ध धर्म और दर्शन और व्यवस्था में जाति नहीं है। फिर भी लाहुल-स्पीति में ठाकर-लोहार का अंतर है। यह ऊंच-नीच, अलगाव और शुद्ध-अशुद्ध का भाव उतना नहीं है जितना आजकल ब्राह्मण व्यवस्था में है। फिर भी है। जैसे-जैसे चंद्रभागा की घाटी में नीचे उतरते हैं, तांदी के बाद पाटन घाटी में, वैसे-वैसे आदिम बौद्ध के साथ-साथ हिंदू देव-परिवार और व्यवस्था उस नील-मणि की शुद्धता में घुलती मिलती है।

तांदी में चंद्र और भागा मिलती है। अब तक हम चन्द्र तीरे चल रहे हैं। भागा बारालाचा से ज्यादा कठिन कटानों से होकर बहती है। तांदी में दोनों का संगम होता है। इसके आगे यह चंद्र भागा कहलाती है। इसका अपभ्रंश चेनाब है। यह चम्बा होकर पंजाब में बहती है। पंजाब में, पंचनद में, जहां मिलकर एक बनती है वह संगम पवित्र है। महाश्यमशान है। काशी के मणिकर्णिका की तरह ही हिमकुक्षि में इस महाश्मशान का माहात्म्य है।

चंद्र और भागा नदियां उत्तर में 16,500 फीट ऊंचे बारालाचा दर्रे से निकलती हैं। शुरू में करीब-करीब उल्टी दिशाओं में बहती हैं। भागा दक्षिण-पश्चिम और चंद्र दक्षिण-पूर्व दिशाओं में बहती हैं। भागा की कटान ज्यादा गहरी और विषम है। चंद्र की उससे कम। दोनों विपरीत दशाओं में बहकर तांदी में मिलती हैं। हिमालय की आदिम कल्पना में इन नदियों के बारे में भी एक कथा गढ़ी है। वह हिमालय वण्डरलैण्ड में इस प्रकार दर्ज है :

कहा जाता है कि सूरज का बेटा और चंद्रमा की बेटी एक दूसरे को चाहने लगे। ब्याह करने की गरज से बारालाचा दर्रे पर उतरे। किसी कारणवश

उन्होंने यह तय किया कि वे उल्टी दिशाओं में चलें फिर तांदी में मिलें। वहां ब्याह रचायें। चंद्रमा की बेटी चंद्र को बारालाचा के उत्तर पूर्वी ढाल से होकर घाटी में आसान रास्ता मिल गया और वह जल्दी तांदी पहुंच गयी। सूरज के बेटे, भागा का रास्ता तंग और कठिन था। वह चंद्र के बराबर न चल सका। वैसे भी शायद ब्याह की उत्कंठा स्त्री में पुरुष से ज्यादा ही होती है। इस मारे भी हो सकता है चंद्र जल्दी पहुंची हो भागा को देर लगी हो। जो भी हो, चंद्र पहले पहुंची तो देखा कि भागा नदारद। कुछ देर इंतजार किया। फिर जिस रास्ते भागा को आना था उस पर चली। ऊपरी घाटी में केलंग के पास भागा से मिली। दोनों संगसंग तांदी आये यहां संगम हुआ।

जो साधु तांदी संगम में स्नान के लिए आते हैं और त्रिलोकनाथ का दर्शन करने जाते हैं दूसरा ही किस्सा बयान करते हैं। वे कहते है कि बहुत समय की बात है कि लाहुल ऋषियों का स्थान था। वे यहां भारी संख्या में ध्यान के लिए आते थे। उन दिनों यहां नदियों में दूध बहता था। तब यह इतनी कठिन कटानों में नहीं बहती थीं। हरी भरी वादियों में बहती थीं। पुलिनशालिनी थीं। इन तटों पर ऋषियों के आश्रम थे। ऋषि समाधि लगाते थे और प्रातः काल आंख मूंदे-मूंदे इन नदियों से थोड़ा दूध पी लेते थे। राक्षसों को यह मालूम हुआ। तो वे जलने लगे। उन्होंने बारालाचा से दोनों ओर धाराओं में जानवर मार कर डाल दिये। प्रातः ऋषियों ने आंख खोले बिना ही नदियों से पान किया। उनकी समाधि टूट गयी। उन्होंने देखा कि नदियों में दूध नहीं, खून बह रहा है। ऋषियों ने अशुद्ध जल पिया है। इसलिए वे अशुद्ध हो गये। लाहुल घाटी छोड़कर जाते हुए उन्होंने नदियों को शाप दिया कि जाओ तुम आज से संकरी कटानों में बहोगी और कोई तुम्हारा जल न पियेगा न कोई इससे पनचक्की चलाएगा।

चंद्र और भागा की कटान गहरी हैं और लोग इनसे पानी आज भी नहीं पीते हैं और न पनचक्की चलाते हैं। ऋषियों का शाप आज भी इन्हें है। इस किस्से से मुझे यह भी मालूम पड़ता है कि इस घाटी में सनातन धर्म क्यों नहीं हैं? उसमें जो शुद्ध-अशुद्ध का इतना विचार है वह लाहुल-स्पीति जैसे हिमानी प्रदेश में निभ नहीं सकता। ना स्नान, ना आचमन हो सकता है। सनातन धर्म का आचरण यहां कठिन है। अगर कोई सनातनी यहां पहुंचे तो इसे क्या कहेगा? या तो वह लाहुल को म्लेच्छ भूमि कहेगा जहां कोई आचार विचार नहीं है, शुचिता नहीं है, या फिर वह इसे देवभूमि कहेगा जहां इस तरह का बंधन नहीं है। सब कुछ यथेच्छ होता है। शौच, स्नान, वगैरह की कोई पाबंदी नहीं है। यहां जब लोग इच्छा हो तब नित्य क्रिया से निवृत्य होते हैं। प्रातः उठकर

शौच जायें यह जरूरी नहीं। स्नान तो और भी कम जरूरी है। फिर कोई छुआ छूत नहीं। शुद्ध-अशुद्ध नहीं। न जाति न योनि। नर-नारी में कोई दुराव नहीं। सम्बन्ध सहज हैं, कोई बनाव-छिपाव नहीं। मांस खाते हैं। छंग पीते हैं। हिम प्रासादों में छह महीने तक पड़े रहते हैं। हिमालय की सुंदरता उन्हे मिली है शीतलमा उन्हें मिली है। बनस्पतियों की गंध मिली है। सकल भोग करते हैं। भोगी-भोग भोगते हैं और ध्यानी ध्यान करते हैं। यह देव भूमि नहीं तो क्या है ? और म्लेच्छ भूमि भी है क्योंकि कोई सनातनी आचार विचार नहीं है।

लाहुल-स्पीति के लोग जब खेतों के काम से मुक्त होते हैं, तब घर में बैठकर अपने कपड़े की व्यवस्था करते हैं। ऊन अपनी भेड़ों से मिलता है। उसे कातना, कपड़ा बुनना, सीना सब अपने घर में ही होता है। यहां के पुरुष और स्त्री दोनों ही नाना प्रकार के काम करना जानते हैं। ये लोग बेकार नहीं रहते।

चंद्र और भागा की घाटियों में आदिम विश्वास हैं। पूजा पाठ है। और बौद्ध धर्म विश्वास, पूजा-पाठ हैं। सनातन हिंदू धर्म नहीं है। चंद्र भागा की घाटी में, पाटन घाटी में इसे प्राय: हिंदू बहुल कहने की भूल की जाती है वहां भी प्रधानता बौद्ध हैं। थोड़े से हिंदू हैं जो वहां स्वांग्ला कहलाते हैं। उनके लिए कोई जन्म यज्ञोपवीत, विवाह, मृत्यु के संस्कार कराने वाला नहीं है। कर्म काण्ड नहीं है। प्राय: ब्राह्मण नहीं हैं। कभी कोई मैदानों में उतरा तो हरिद्वार में गंगा नहा आया। वहीं से जनुऊ ले आया। कंधे पर डाल लिया। उसका भी कोई विधि विधान नहीं है। कोई उसे देने वाला नहीं। इसलिए व स्वांग्ला भी अपने क्रिया कर्म लामा से कराते हैं। ब्राह्मण देवता तो इस मलिच्छ भूमि में रह नहीं सकते। जहां ब्राह्मण नहीं वहां ब्राह्मण कर्मकाण्ड कौन करेगा ? इसलिए वे स्वांग्ला चंद्र भागा की निचली घाटी में एक सांस्कृतिक शून्य में रहते हैं। बौद्धों से घिरे हैं पर बौद्ध नहीं है। ब्राह्मण मतावलम्बी हैं लेकिन ब्राह्मण वहां हैं नहीं। चंद्रभागा के उस पार ब्राह्मण हैं। हमने उनको बहुत ढूंढ़ा पर मिले नहीं। इसलिए वे ब्राह्मण व्यवस्था को जानते नहीं। जो जानते हैं वे भी बरतते नहीं हैं। क्योंकि उसके पंडे पुजारी नहीं हैं। राक्षसों ने चंद्र भागा के जल को अपवित्र जो कर दिया। वे तब से यहां से कूच कर गये। और शाप दे गये।

तांदी संगम पर हम रुके। ऊपर गोनपा में खबर पहुंची कि प्रधान लामा सहित लामावृन्द सड़क पर आये। खदक पहनाये। बड़ा सत्कार किया। ऊपर गोनपा में ले गये। गोनपा इनके बौद्ध विहार हैं। इनमें बौद्ध देव परिवार की मूर्तियां होती हैं, ग्रंथ होते हैं और वाद्य यंत्र वगैरह होते हैं बड़े-बड़े तांबे के पात्र हैं जिन पर नाग और अन्य चिन्ह उकेरे गये हैं। उनमें नमकीन, चाय,

छाजा उबलती रहती है। पानी में चाय के ढोंके छोड़ते हैं, मक्खन छोड़ते हैं और नमक छोड़ते हैं। इसे जिन पात्रों में पिलाते हैं वे चीनी मिट्टी के होते हैं। पुराने तो चीन के बने भी होते हैं। इन्हें प्राय: चांदी के पात्र में रखते हैं। ये पात्र भी अलंकृत होते हैं। तांत्रिक चिन्हों से निर्मित होते हैं। इनका ढक्कन भी चांदी का होता है। इनमें नमकीन चाय डालते हैं। जैसे ही पात्र खाली होता है भर देते हैं। यह चाय स्फूर्ति देती है, शक्ति देती है। लेकिन अति तो सर्वत्र बरजने जैसी है। इसलिए मैं पात्र को खाली करने से डरता हूं। खाली हुआ नहीं कि फिर कोई लामा या चोमो भर देगा। इसलिए मैं थोड़ा-थोड़ा पीता हूं। फिर मीठी चाय देते हैं। उसके साथ मैदान से हमसे पहले बिस्कुट महराज पहुंच गये हैं। श्री टशि पलजोर उनसे भोटी में बात करते है। हम तो आंखों ही आंखों में बात करते हैं। कुछ बोलते नहीं।

लामा वृन्द भाव विभोर हैं। हम वाराणसी से आये हैं जहां ऋषिपत्तन मृगदाव में गौतम बुद्ध ने धर्म चक्र प्रवर्तन किया है। वह यह शास्त्रों से जानते है। उन्होंने सारनाथ देखा नहीं। हम वहां के हैं। हिमालय के इस प्रत्यंत प्रदेश में आये हैं। वाप्रीति हैं कृतज्ञ हैं। हमने हिमालय का नाम सुना है, रूप नहीं देखा। हममें शीतलता का गुण नहीं, वह ध्यान का कर्म नहीं। ये लामा हिमालय के धर्म के मानने वाले हैं। उनसे मिल कर हम भी प्रीत हैं, कृतज्ञ हैं। आगे का कार्यक्रम तय करते हैं। लाहुल की अंतिम सभा इसी गोनपा में होनी है। यह लाहुल की पहली गोनपा है जो हपली भी है और हमारे लिए अंतिम भी।

लामागण हमें फिर जीप तक छोड़ने आते हैं। ये जिस आसानी से इस चढ़ायी पर चढ़ते हैं उसी आसानी से उतरायी पर उतरते हैं। हमें चढ़ने में भी श्रम पड़ा है, उतरने में और भी ज्यादा। ढलान होने से शरीर का वजन नीचे लुढ़काता है। रास्ता टेढ़ा-मेढ़ा है। चलने से मंज गया है। रपटता है। सम्हल-सम्हल कर नीचे उतरते हैं।

"जुले-जुले" कह कर विदा लेते हैं। तांदी से पुल पार कर केलंग की ओर बढ़ते हैं। केलंग अब पास है। लाहुल-स्पीति का "हेडक्वार्टर" है। वहीं हमारा लाहुल का पहला डेरा पड़ने वाला है। मनाली, रोहतांग, खोकसर, तांदी पीछे छूट रहा है और केलंग आ रहा है। गेपंग राजा देख रहा है। चंद्र-तीर पीछे छूटा। अब हम भागा तीरे चल रहे हैं।

लेखक-परिचय

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' भारतेंदु काल के गद्य लेखक हैं। भारतेंदु काल के साहित्य की सजीवता आपके गद्य में भी है। भाषा के प्रति आपकी दृष्टि अत्यंत सजग थी। आप भाषा में न उर्दूपन आने देना चाहते थे, न अंग्रेजी के शब्दों से भाषा को विकृत करना चाहते थे। संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों से ही आप हिंदी को समृद्ध करने के पक्ष में थे।

इन्होंने 'आनंदकादंबिनी' पत्रिका का प्रकाशन भी किया था।

प्रेमघन जी का जन्म सन् 1855 में मिर्जापुर के एक उच्च उपाध्याय ब्राह्मण वंश में हुआ था। आप बड़े रईस मिजाज के व्यक्ति थे। बातचीत में भी रईसी और वक्रता का परिचय दिया करते थे।

प्रेमघन जी ने कई नाटकों की रचना की है। 'भारत सौभाग्य' नाटक सन् 1888 में लिखा था। नाटक का कोई पूर्व आदर्श न होने के कारण यह नाटक मंचीय नहीं है। आपके अन्य नाटक 'प्रयाग रामागमन' और 'वीरांगना रहस्य महानाटक' हैं। 'प्रयाग रामागमन' में सीता से ब्रज भाषा बुलवाई गई है। कई हास्य लघु नाटक भी आपने रचे, जो 'आनंद कादंबिनी' में छपे थे। आपने नाटकों के अतिरिक्त निबंधों की भी रचना की है तथा आप कवि और पत्रकार भी थे। हिंदी के विकास में आपका महत्वपूर्ण योगदान है। सन् 1922 में आपका स्वर्गवास हुआ।

बनारसीदास चतुर्वेदी

बनारसीदास चतुर्वेदी अपने जीवनकाल में मात्र साहित्यकार ही नहीं, एक संस्था बनकर रहे हैं। वे जितने संवेदनशील साहित्यकार थे, उतने ही सजीव पत्रकार भी। हिंदी में आप रेखाचित्र, संस्मरण और पत्र लेखन के लिए प्रसिद्ध थे।

चतुर्वेदी जी का जन्म 24 दिसंबर सन् 1892 में फिरोजाबाद (आगरा) में हुआ था। उन्होंने कुछ समय तक अध्यापन भी किया था। आपकी पत्रकारिता 'विशाल भारत' से आरंभ हुई। आपने 'विशाल भारत' को अपने संपादन से

अत्यंत ऊंचा स्तर प्रदान कर दिया था। उनके समय के प्रतिष्ठित साहित्यकार 'विशाल भारत' में लिखकर प्रसन्नता का अनुभव करते थे। कालांतर में चतुर्वेदी जी का संपर्क गणेश शंकर विद्यार्थी से हुआ। आप सी० एफ० एंड्रयूज के संपर्क में भी रहे और चोटी के अनेक राजनीतिज्ञों से भी आपका संपर्क था। टीकमगढ़ से प्रकाशित 'मधुकर' का आपने संपादन किया था। आपका कथन था— 'सद्विचारों का प्रचार ही मेरा मुख्य उद्देश्य था, है और रहेगा।' पूरे जीवन में उन्होंने इसी सिद्धांत का पालन किया। सन् 1985 में आपका स्वर्गवास हो गया।

रायकृष्णदास

आपकी ख्याति हिंदी जगत में गद्य गीतकार के रूप में है। वैसे आपने काव्य की रचना भी की है और कहानियों की भी। पंद्रह वर्ष की अवस्था में आपने 'दुलारे रामचंद्र' नाम से एक उपन्यास भी आरंभ किया था, पर पूरा न हुआ। 'भावुक' और 'ब्रजराज' नाम से आपके दो कविता संग्रह भी हैं और साधना, छायापथ, संलाप तथा प्रवाल नाम से आपके गद्यगीतों के संग्रह प्रकाशित हुए हैं। आपके गद्यगीत आध्यात्मिकता का संस्पर्श लिए हुए हैं, जिनको पढ़ने में रविंद्रनाथ टैगोर की गीतांजलि के गीतों की सरसता प्राप्त होती है।

बाबू रायकृष्णदास का जन्म सन् 1892 में काशी के एक प्रतिष्ठित अग्रवाल वंश में हुआ था। आपके घर का वातावरण साहित्यिक था, क्योंकि महावीर प्रसाद द्विवेदी और मैथिलीशरण गुप्त जैसे साहित्यकारों से आपके पिताजी का अच्छा संबंध था।

आप साहित्य साधना के क्रम में भारतीय कलाओं के प्रति भी आकृष्ट हुए। आप अपने समय के प्रसिद्ध कलाविद् थे। 'भारतीय मूर्ति कला' और 'भारतीय चित्रकला' आपकी दो ऐसी कृतियां हैं, जो भारतीय कला के अध्येताओं के लिए बहुत बड़ा आधार हैं। आपने अपना जीवन कला को समर्पित कर दिया था।

सन् 1980 में काशी में आपका स्वर्गवास हो गया।

राहुल सांकृत्यायन

हिंदी में राहुल सांकृत्यायन एक ऐसे तेजस्वी साहित्यकार हुए हैं, जिन्होंने साहित्य सृजन के साथ ही यात्रा साहित्य को विधागत महत्व प्रदान किया। राहुल जी के एक नाना, जो सेना में कार्यरत थे, राहुल जी को घूमने की प्रेरणा

दिया करते थे। अपने भ्रमण की दुनियां में खोए राहुल जी के नाना पं० रामशरण पाठक बालक राहुल को अक्सर यह शेर सुनाया करते थे—

सैर कर दुनिया की गाफिल, जिंदगानी फिर कहां
जिंदगानी भी रही तो नौजवानी फिर कहां।

राहुल जी के लिए यह बात महामंत्र सिद्ध हुई और उन्होंने संसार भ्रमण का संकल्प कर लिया।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन का जन्म सन् 1893 में पंदहा ग्राम जिला आजमगढ़ में हुआ था। वाराणसी में इन्होंने संस्कृत की उच्च शिक्षा ग्रहण की, जहां उनमें पालि साहित्य के प्रति शोधवृत्ति उत्पन्न हुई। भ्रमण, अध्ययन और लेखन यही उनके मुख्य व्यसन थे। राहुल जी को भारत का सर्वश्रेष्ठ भ्रमणार्थी माना जा सकता है। भ्रमण में रुचि रखने वालों के लिये आपने 'घुमक्कड़ शास्त्र' नामक ग्रंथ की भी रचना की है।

आपकी प्रमुख कृतियां हैं—मेरी जीवन यात्रा (आत्मचरित्र) वोल्गा से गंगा, सिंह सेनापति, जययौधेय, (कथा साहित्य), दर्शन दिग्दर्शन (दर्शन), विश्व की रूप रेखा (विज्ञान), मध्य एशिया का इतिहास (इतिहास) और कोश विषयक आपके ग्रंथ हैं—शासन शब्दकोश, राष्ट्रभाषा कोश तथा तिब्बती हिंदी कोश।

सन् 1963 में महापंडित राहुल सांकृत्यायन का देहावसान हो गया।

महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा हिंदी जगत का एक ऐसा नाम है जो सदा साहित्य को समर्पित रहा है। यद्यपि महादेवी जी की ख्याति काव्य के क्षेत्र में मुख्यतः है और छायावाद की कवि चतुष्टयी की वे प्रमुख स्तंभ हैं, पर अपने गद्य में भी वे बड़ी तेजस्वी हैं। अपनी एक कविता में कवियत्री ने कहा है—'मैं लगाती चल रही नित आंसुओं की हाट और चिनगारियों का एक मेला।'

यशस्वी साहित्यकार महादेवी वर्मा का जन्म सन् 1907 में फर्रुखाबाद में हुआ था। पिता एक कालेज में प्राचार्य और मां अनन्य हिंदी प्रेमी थीं। वे मीरा के भजन बड़े भक्तिभाव से गाती थीं। महादेवी की काव्य रचना पर विशेष रूप में कविता में करुणा की प्रवृत्ति पर मां का प्रभाव रहा है।

प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्य के रूप में आपने नारी शिक्षा को बड़ा बल प्रदान किया। 'चांद' पत्रिका का आपने संपादन भी किया था। साहित्यकारों के हित के लिए आपने साहित्यकार संसद की स्थापना की थी। साहित्य सृजन के लिये आपको 'नीरजा' पर सेक्सरिया पुरस्कार और 'यामा' पर मंगला प्रसाद पारितोषिक प्रदान किया गया था।

गत वर्ष आपको उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का एक लाख रुपए का भारत-भारती और डेढ़ लाख रुपए का भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रदान किया गया। आपके विशाल साहित्य सृजन के लिए ये पुरस्कार उपयुक्त ही रहे हैं।

आपकी कृतियां हैं—नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत और दीपशिखा। ये सभी काव्य कृतियां हैं। आपके निबंध संग्रह हैं—शृंखला की कड़ियां, क्षणदा और हिंदी का विवेचनात्मक गद्य। रेखाचित्र रचना में तो आप अप्रतिम हैं। सामाजिक विसंगतियों और जीवन मूल्यों पर आधारित आपकी दो रेखाचित्र कृतियां हैं—'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएं'।

रघुवीर सिंह

यद्यपि साहित्य भावुकता से ही जन्म लेता है, पर हिंदी में कुछ ऐसा साहित्य भी है,जो मन में विशेष रूप से भावुकता जगाता। ऐसा साहित्य अपनी भावात्मकता के आधार पर ही मानव हृदय को सही दिशा की ओर बढ़ने की प्रेरणा देता है। महाराज रघुवीर सिंह का सृजन ऐसा ही है जो जागतिक चाकचिक्य से दूर शांति, करुणा और मार्मिकता के लोक में ले जाता है। इतिहास रघुवीर सिंह का प्रिय विषय है। आपने मध्यकालीन इतिहास के उन स्मारकों को लिया है, जिनसे मुगल राजाओं का संबंध रहा है और जिन स्मारकों में मुगलवंश के लोगों का सुख-दुख, हास-विलास, पीड़ा और करुणा व्यक्त हुई है। मध्यकालीन इतिहास के ये स्मारक हैं ' ताजमहल, लालकिला, फतेहपुरी और अकबर की समाधि।

रघुवीर सिंह ने साहित्य जगत में एक अप्रतिम धारा प्रवाहित की। आप सीतामऊ (मध्य प्रदेश) के निवासी थे, जहां सन् 1908 में आपका जन्म हुआ था।

आपकी कृतियां हैं—शेष स्मृतियां, सप्तद्वीप, बिखरे फूल और जीवन कण। आपकी इतिहास विषयक कृतियां हैं—पूर्व मध्यकालीन भारत, मालवा में युगांतर तथा पूर्व आधुनिक राजस्थान।

अज्ञेय

हिंदी की प्रयोगवादी काव्यधारा के उन्नायक सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय', बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार हैं। वे जितने काव्य के क्षेत्र में चर्चित हैं, उतने ही कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में भी। अज्ञेय जी चिंतक और गंभीर समीक्षक भी हैं। ललित निबंध और यात्रावृत्तों के लिए भी उनकी ख्याति है। 'अज्ञेय' लेखक का उपनाम है।

अज्ञेय का जन्म सन् 1911 में देवरिया जिले के कसिया नामक गांव में हुआ था। आपके पिता पं० हीरानंद शास्त्री संस्कृत के प्रकांड विद्वान् और प्रसिद्ध पुरातत्वविद थे। भारत सरकार के पुरातत्व विभाग के वे बड़े अधिकारी थे। आपका स्थानान्तरण विभिन्न स्थानों में होता रहता था। फलतः अज्ञेय जी एक स्थान पर टिक कर न रह सके।

अज्ञेय जी ने भारतीय स्वतंत्रता के संघर्ष में भी भाग लिया और जेल गए। जेल से छूटने पर आपने कलकत्ता से प्रकाशित 'विशाल भारत' मासिक पत्र के लिए लिखना आरंभ किया। कुछ समय तक सेना में भी कार्य किया। सन् 1950 से 1955 तक आकाशवाणी के समाचार विभाग से संबद्ध रहे। बाद में कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय में भारतीय संस्कृति के अध्यापक के रूप में कार्य किया। 'आंगन के पार द्वार' पर आपको साहित्य एकादमी का पुरस्कार प्राप्त हो चुका है।

साहित्य सृजन के साथ ही पत्रकारिता में भी आपकी काफी अभिरुचि रही है। हिंदी के प्रतिष्ठित साप्ताहिक पत्र 'दिनमान' का आरंभ आप ही के संपादन में हुआ था।

योरोपीय देशों की आपने अनेक बार यात्रा की है और 'अरे यायावर रहेगा याद' तथा 'एक बूंद सहसा उछली' आपकी प्रसिद्ध यात्रा कृतियां है। आपके उपन्यास हैं—शेखर : एक जीवनी (दो भाग), नदी के द्वीप और अपने अपने अजनबी। कहानी संग्रह हैं—त्रिपथगा, परंपरा, कोठरी की बात, ये तेरे प्रतिरूप और जयदोल। काव्य कृतियां—भग्नदूत, इत्यलम, हरी घास पर क्षण भर, आंगन के पार द्वार, इंद्रगनु रौंदे हुए ये, अरी ओ करुणा प्रभामय तथा बावरा अहेरी हैं। आपने 'तार सप्तक' का संपादन किया है जो चार भागों में है और हिंदी जगत की प्रतिष्ठित कृति है। 'कितनी नावों में कितनी बार' पर आपको भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार तथा भारत भारती पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है।

4 अप्रैल 1987 को दिल्ली में अकाल मृत्यु।

डा० रघुवंश

प्रगतिशील विचारों के अनुयायी और चिंतक डा० रघुवंश हिंदी के प्रमुख साहित्यकार हैं। कुछ समय पूर्व तक आप इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्रोफेसर और अध्यक्ष पद पर थे। अब अवकाश प्राप्त कर हिंदी साहित्य की सेवा में संलग्न हैं।

डा० रघुवंश का जन्म 30 जून 1921 को गोपामऊ, जि० हरदोई में हुआ था। हिंदी जगत को आपने कई महत्वपूर्ण कृतियां दी हैं। आप विचारक और साहित्य सर्जक ही नहीं, भ्रमण में भी अभिरुचि लेते हैं, जिसका प्रतिफल 'मृग-

मरीचिका का देश' कृति है। आपकी प्रमुख रचनाएं हैं--साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य (साहित्य चिंतन) छायातप (कहानी संग्रह), प्रकृति और काव्य (समीक्षा), मानव पुत्र ईसा : जीवन और दर्शन, आधुनिक कवि निराला (समीक्षा), जेल और स्वतंत्रता, आधुनिकता और सृजन शीलता, भारती का काव्य।

साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य की भूमिका में आपने लिखा है "सन् 1942 में मैं इलाहाबाद आया। उसके पूर्व पाठक के रूप में हिंदी साहित्य से व्यापक परिचय होने पर भी राजनीतिक चेतना तथा आंदोलन से अधिक गहरे स्तर पर संबद्ध रहा था।"

विद्यानिवास मिश्र

हिंदी के प्रतिष्ठित साहित्यकार और चिंतक डा० विद्यानिवास मिश्र ललित निबंधों के सृजन में अग्रगण्य हैं। आपके निबंधों में सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना पर विशेष बल है। वे पाश्चात्य संस्कृति और ओढ़ी हुई सभ्यता के आलोचक हैं और आज के त्रास और ऊब के मूल में इनको आधारभूत रूप में लेते हैं।

मिश्र जी हिंदी के ही कृती साहित्यकार नहीं हैं, संस्कृत के भी वे गंभीर व्याख्याता हैं। साहित्य-चिंतन को समर्पित डा० विद्यानिवास मिश्र का जन्म 14 जनवरी सन् 1926 को गोरखपुर जिलांतर्गत पकड़डीहा गांव में हुआ था। आपकी आरंभिक शिक्षा गोरखपुर में ही हुई और उच्च शिक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय में, जहां से आपने संस्कृत से एम० ए० किया। इसी विश्वविद्यालय से आपने 'पाणिनीय व्याकरण की विश्लेषण पद्धति' पर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की।

हिंदी और संस्कृत के साथ ही अंग्रेजी पर भी आपका पूर्ण अधिकार है और हिंदी जगत में एक प्रतिष्ठित भाषा शास्त्री के रूप में भी आप चर्चित हैं। कुछ समय तक हिंदी साहित्य सम्मेलन और प्रयाग आकाशवाणी से संबद्ध रहने के साथ ही आपने मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश के सूचना विभागों को भी अपनी सेवाएं प्रदान कीं।

वाराणसी के संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में आधुनिक भाषा और भाषाविज्ञान विभाग के अध्यक्ष पद पर भी एक दशक से अधिक समय तक रहने के बाद कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी भाषा संस्थान, आगरा में कुछ वर्षों तक निदेशक पद पर रहे। संप्रति आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में मानद प्रोफेसर हैं। साहित्य जगत की आपकी यात्रा बहुआयामी और लंबी है।

आपकी प्रमुख कृतियां हैं—तुम चंदन हम पानी, मैंने सिल पहुंचाई, आंगन का पंछी और बनजारा मन, मेरे राम का मुकुट भीग रहा है, छितवन की

छांह, वसंत आ गया, पर कोई उत्कंठा नहीं, साहित्य चेतना, हिंदी की शब्द संपदा तथा रीति विज्ञान आदि ।

कृष्णनाथ

प्रोफेसर कृष्णनाथ जी का जन्म 26 जून 1934 को वाराणसी में एक सुशिक्षित परिवार में हुआ था। आपने अर्थशास्त्र विषय से एम० ए० किया है ।

पर्यटन और जनसामान्य के बीच कार्य करने की प्रवृत्ति आप में आरंभ से ही रही है । फलतः शिक्षा समाप्त होते ही आप आदिवासियों के बीच में गए और उनकी आकांक्षाओं के हित में उनके संघर्षों में भागीदारी की । बिहार के पलामू जिले में प्रायः एक वर्ष आपने यह कार्य किया । हिंदी और स्वदेशीपन के प्रति एकनिष्ठ कृष्णनाथ जी ने 'अंग्रेजी हटाओ आंदोलन' को भी नेतृत्व प्रदान किया और आंदोलन का प्रधानमंत्री पद सम्हाला । इसी क्रम में वाराणसी से प्रकाशित 'अंग्रेजी हटाओ' पत्रिका का संपादन भी किया । समाजवादी आंदोलन में भी आपने भाग लिया और बचपन से ही इस आंदोलन से अपने को जोड़ लिया था ।

आपका साहित्य और संस्कृति से भी सदा लगाव रहा है । पिछले दशक से आपकी रुचि बौद्ध दर्शन और साधना में अधिक गहन हुई है । इसी प्रसंग में लद्दाख, किन्नौर, लाहुल-स्पीति, प्रत्यंत नेपाल और अरुणाचल आदि प्रदेशों की परंपरागत बौद्ध संस्कृति का अध्ययन करने के अवसर आए । सातवाहन ने उनके यात्रावृत्तांत का त्रिक —'स्पीति में बारिश', 'किन्नर धर्मलोक 'और 'लद्दाख में रागविराग एवं जीवन दर्शन की संभावना' को भी प्रकाशित किया है ।

सन 1981 में प्रायः 80 दिन में आपने हवाई मार्ग से पृथ्वी परिक्रमा भी की । यह यात्रा-वृत्तांत अभी अप्रकाशित है । 'एक्सपीरिएंसिंग द हिमालय' आपकी एकल फोटो प्रदर्शनी भी आयोजित हुई है ।

आपकी प्रकाशित कृति 'सत्याग्रह' है तथा आपने पुस्तकों और पत्रिकाओं का संपादन भी किया है, जिनमें प्रमुख हैं 'मैनकाइंड' (अंग्रेजी), 'जन', 'क-ख-ग' और 'आर्थिकी' ।

संप्रति, आप काशी विद्यापीठ में अर्थशास्त्र विभाग के प्रोफेसर हैं ।

मुद्रक : जुपिटर ऑफसैट प्रेस, शाहदरा, दिल्ली-110032.